त्रैमासिक जनवरी-मार्च 2006 ● इस अंक का मूल्य-15 रुपये

मुक्तिकामी छात्रों-नौजवानों की त्रैमासिक पत्रिका

आह्वान

कैम्पस टाइम्स

स्मृति-संकल्प यात्रा विशेषांक ।

भ्रष्टाचार और पूँजीवाद : कुछ बुनियादी सवाल और कुछ बुनियादी बातें

विशेष लेख

भगतसिंह की वैचारिक विरासत और हमारा समय

ईश्वर का बहिष्कार

मार्क ट्वेन की दो कहानियाँ

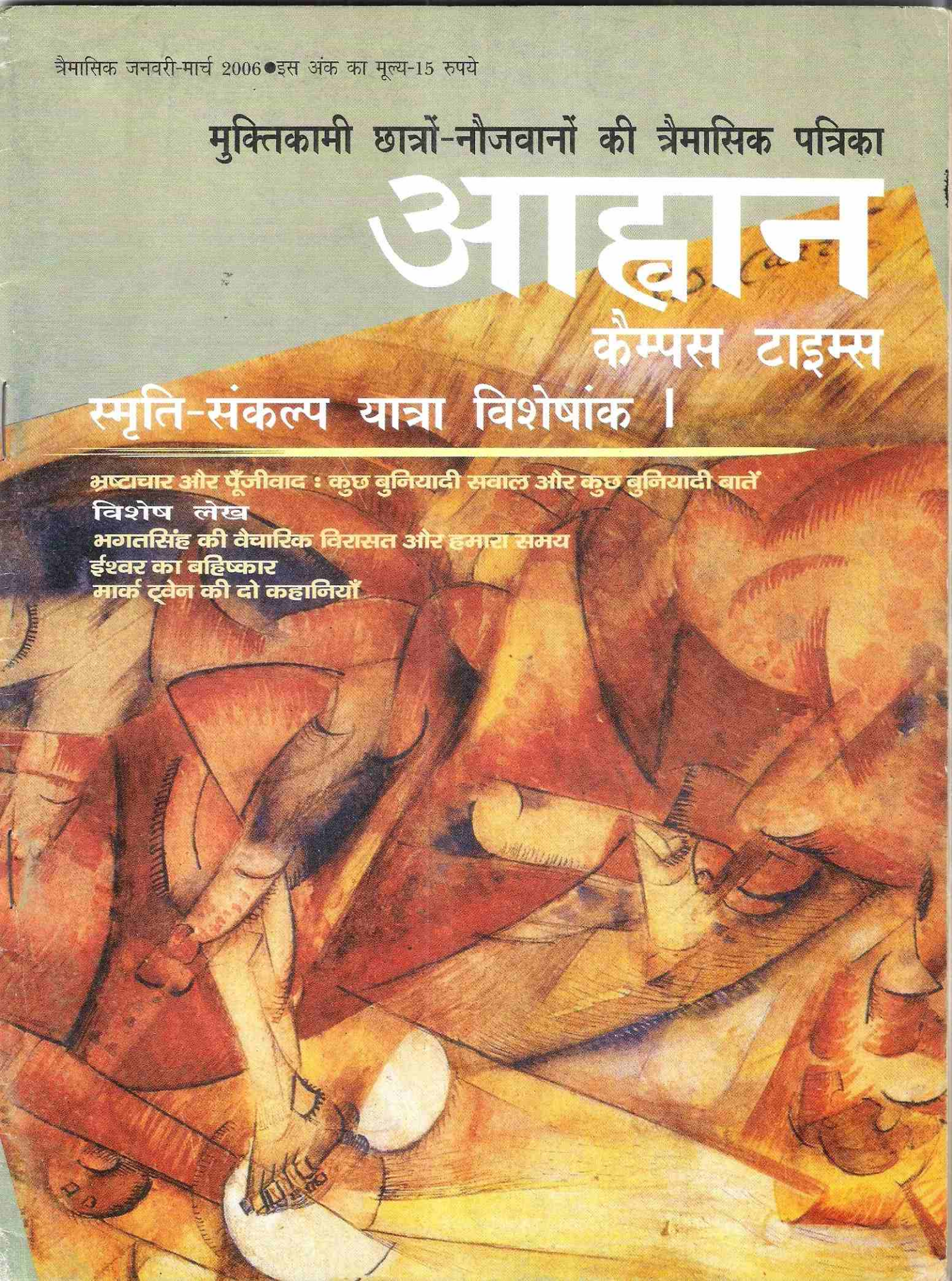

नये गीत

नये गीत
तीसरा पहर कहता है : मैं छाया के लिये प्यासा हूँ
चाँद कहता है : मुझे तारों की प्यास है।
बिल्लौर की तरह साफ झरना होंठ माँगता है
और हवा चाहती है आहें।

मैं प्यासा हूँ खुशबू और हँसी का
मैं प्यासा हूँ चन्द्रमाओं, कुमुदिनियों
और झुर्रीदार मुहब्बतों से मुक्त
गीतों का।

कल का एक ऐसा गीत
जो भविष्य के शान्त जलों में हलचल मचा दे
और उसकी लहरों और कीचड़ को
आशा से भर दे।

एक दमकता, इस्पात-जैसा ढला गीत
विचार से समृद्ध
पछतावे और पीड़ा से अम्लनये गीत
तीसरा पहर कहता है : मैं छाया के लिये प्यासा हूँ
चाँद कहता है : मुझे तारों की प्यास है।
बिल्लौर की तरह साफ झरना होंठ माँगता है
और हवा चाहती है आहें।

मैं प्यासा हूँ खुशबू और हँसी का
मैं प्यासा हूँ चन्द्रमाओं,
कुमुदिनियों
और झुर्रीदार मुहब्बतों से मुक्त
गीतों का।

कल का एक ऐसा गीत
जो भविष्य के शान्त जलों में हलचल मचा दे
और उसकी लहरों और कीचड़ को
आशा से भर दे।

एक दमकता, इस्पात-जैसा ढला गीत
विचार से समृद्ध
पछतावे और पीड़ा से अम्लीन
उड़ान भरे सपनों से बेदाग़।
एक गीत जो चीज़ों की आत्मा तक
पहुँचता हो, हवाओं की आत्मा तक
एक गीत जो अन्त में अनन्त हृदय के
आनन्द में विश्राम करता हो।

आह्वान के बारे में कुछ महत्वपूर्ण विचारबिन्दु

➢ 'आह्वान' विपर्यय के इस कठिन अंधेरे दौर में क्रान्ति के नये संस्करण की तैयारी के लिए युवा वर्ग का आह्वान करता है। यह एक नूतन क्रान्तिकारी नवजागरण और प्रबोधन का शंखनाद करता है। यह नई क्रान्ति की नेतृत्वकारी शक्ति के निर्माण के लिए, उसकी मार्गदर्शक वैज्ञानिक जीवनदृष्टि और इतिहासबोध की समझ कायम करने के लिए और भारतीय क्रान्ति के रास्ते की सही समझदारी कायम करने के उद्देश्य से विचार-विनिमय और बहस-मुबाहसे के लिए आम जनता के विवेकशील बहादुर युवा सपूतों को आमंत्रित करता है। 'आह्वान' क्रान्ति की आत्मा को जागृत करने की जरूरत का अहसास है। यह एक नई क्रान्तिकारी स्पिरिट पैदा करने की तड़प की अभिव्यक्ति है। लोग यदि लोहे की दीवारों में कैद नशे की गहरी नींद सो रहे हैं, तब भी हमें लगातार आवाज लगानी ही होगी। नींद में घुट रहे लोगों के कानों तक लगातार पहुंचती हमारी आवाज कभी न कभी उन्हें जगायेगी ही। भूलना नहीं होगा कि एक चिंगारी सारे जंगल को आग लगा सकती है। 'आह्वान' ऐसी ही एक चिंगारी बनने को संकल्पबद्ध है।

➢ 'आह्वान' जिन्दगी के इस दमघोंटू माहौल को बदलने के लिए तमाम जिन्दा लोगों का आह्वान करता है। यह उन सभी का आह्वान करता है जो सही मायने में नौजवान हैं। जिनमें व्यक्तिगत स्वार्थ, कायरता, दुनियादारी, धन लिप्सा, कैरियरवाद और पद-ओहदे-हैसियत- मान्यता की गलाकाटू प्रतिस्पर्धा के खिलाफ लड़ने का माद्दा और जिद है, जिनकी रगों में उष्ण रक्त प्रवाहित हो रहा है। जो न्याय, सौन्दर्य, प्रगति और शौर्य के पुजारी हैं। 'आह्वान' जनता की सेवा में लग जाने के लिए, मेहनतकश अवाम में घुलमिलकर उसकी मुक्ति का परचम थाम लेने के लिए ऐसे ही नौजवानों का आह्वान करता है। सामाजिक क्रान्तियों की कठिन शुरुआत की चुनौतियों को स्वीकारने के लिए पहले जनता के बहादुर युवा सपूत ही आगे आते हैं। इतिहास के रथ के पहिए नौजवानों के उष्ण रक्त से लथपथ हुआ करते हैं।

इस अंक में

पाठक मंच 2

अपनी ओर से

भ्रष्टाचार और पूँजीवाद : कुछ बुनियादी सवाल और कुछ बुनियादी बातें 3

सामयिकी

भारतीय समाज और जनवाद पर कुछ विचार 7

सिलिकोसिस : एक धीमी और निश्चित मौत 31

समाज

'इण्डियन आइडल' या 'इण्डियन ईडियट' 6

विशेष लेख

भगतसिंह की वैचारिक विरासत और हमारा समय 10

साहित्य

फेदेरिको गार्सिया लोर्का की एक कविता 33

अराजनीतिक बुद्धिजीवी (ओतो रेने कास्तिलो) 33

कचोटती स्वतंत्रता (नाज़िम हिकमत) 49

आधुनिक काल (बॉबी सैण्ड्स) 49

एक अच्छे छोटे लड़के की कहानी (मार्क ट्वेन) 34

एक बुरे छोटे लड़के की कहानी (मार्क ट्वेन) 36

सकर्मक विमर्श 25

विश्व पटल पर

इराक़ी नागरिकों पर अमेरिका का एक और वहशियाना जुल्म 8

वियतनाम युद्ध के तीस बरस 29

फ्रांस की सड़कों पर बह निकला आक्रोश का लावा 32

विरासत

ईश्वर का बहिष्कार 16

टेढ़ी आँखें तिरछी नज़र

चाल-चेहरा-चरित्र पर कुछ चिन्तन-चर्वण 38

लघुकथा

शार्क और छोटी मछलियाँ (बेर्टोल्ट ब्रेष्ट) 52

गतिविधि बुलेटिन 45

आह्वान
कैम्पस टाइम्स

मुक्तिकामी छात्रों-नौजवानों की त्रैमासिक पत्रिका

वर्ष 14 अंक 1 जनवरी-मार्च 2006

सम्पादक मण्डल
कविता/अभिनव
सज्जा
रामबाबू

एक प्रति का मूल्य
दस रुपये
इस अंक का मूल्य
पन्द्रह रुपये
वार्षिक
चालीस रुपये
(डाक व्यय सहित 48 रुपये)

सम्पादकीय कार्यालय : बी-100, मुकुन्द विहार, करावल नगर, दिल्ली फोन : (011) 55976788
स्वत्वाधिकारी आदेश सिंह द्वारा नौजवान कार्यालय, कल्याणपुर, गोरखपुर से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा आफसेट प्रेस, नखास, गोरखपुर से मुद्रित।

पाठक मंच

आह्वान को नियमित करें

मैं पिछले एक वर्ष से 'आह्वान' पढ़ रहा हूँ। मुझे यह एक बेहद ज़रूरी और विचारोत्तेजक पत्रिका लगती है। पिछले अंक में आइंस्टीन पर आया लेख बेहद जानकारी देने वाला था। साथ ही जोन रोयलोव्स की किताब की समीक्षा से भी कई नई जानकारियाँ मिलीं। होसे मारिया सिसोन की कविताएँ संवेदनाओं को झकझोरने वाली थीं। लेकिन मेरा सुझाव है कि इसे नियमित करने का प्रयास करें। क्योंकि विचारों के सम्प्रेषण में एक निरन्तरता का होना ज़रूरी है।

योगेश, गोविन्दपुरी, दिल्ली

संयोग से 'आह्वान' मिली

मैं लखनऊ से दिल्ली आ रहा था। अलीगढ़ के पास कुछ नौजवान ट्रेन में चढ़े जो भगतसिंह के विचारों पर भाषण दे रहे थे और नारे लगा रहे थे। मैंने उनके पर्चे लिए और साथ ही उन्होंने मुझे यह पत्रिका 'आह्वान' दी। दिल्ली आते-आते मैं पत्रिका को पूरा पढ़ गया। मेरे विचार में आज इन विचारों की बेहद ज़रूरत है। आज जब देश का युवा वर्ग निराशा की गर्त में पड़ा है या कुसंस्कृति की अफीम के नशे में चूर है, ऐसी पत्रिका और ऐसे प्रयास ही उन्हें सही रास्ते पर ला सकते हैं।

मैंने दिल्ली पहुँचते ही आह्वान की सदस्यता ली। मुझे आइंस्टीन पर आया लेख बेहद रोचक और उद्विग्न करने वाला लगा। ऐसे लेखों को नियमित तौर पर दें। साथ ही संसदीय बातबहादुरों यानी नकली वामपंथियों पर आई टिप्पणी भी काफी चुटीली थी। उम्मीद करता हूँ कि आह्वान अपनी इस नैसर्गिकता और तीखे तेवर को बरकरार रखेगा।

अनिल राजपूत, दिल्ली

साहित्यिक सामग्री बढ़ाएँ

मैं आह्वान का नियमित पाठक हूँ। पिछले कुछ समय में मुझे यह रुझान लगा है कि साहित्यिक सामग्री कुछ कम हुई है, खासकर कहानियाँ। पत्रिका की वैचारिक अन्तर्वस्तु तो काफी समृद्ध है। इसे पढ़ना हमेशा एक ताज़ा कर देने वाला अनुभव होता है। मैं थोड़ा साहित्यिक रुचि वाला व्यक्ति हूँ। लिहाज़ा, आप मेरी इस माँग को, या कहें ज़रूरत को समझ सकते हैं।

उम्मीद है आप मेरे सुझाव पर विचार करेंगे। अगले अंक के इन्तज़ार में....

मनोज रघुवंशी, हापुड़

"अगर हिन्दुस्तान आज़ाद हुआ और बजाय हमारे गोरे आकाओं के हमारे वतनी भाई सल्तनत व हुकूमत की बागडोर अपने हाथों में ले लें और तक़रीकोतमीज़ (बँटवारा)–अमीर व ग़रीब, ज़मींदार व काश्तकार में रहे तो ऐ ख़ुदा, मुझे ऐसी आज़ादी उस वक़्त तक न देना जब तक तेरी मख़लूक में मसावात (बराबरी) क़ायम न हो जाए।"

–अशफाक उल्ला

आह्वान खून में उबाल ला देता है

'आह्वान' पढ़ी। सम्पादकीय बेहद विचारोत्तेजक था और भगतसिंह को याद करने के सही तरीके को काफी अच्छी तरह समझाया गया है। आइंस्टीन पर आए लेख से काफी ऐसी जानकारियाँ मिलीं जिन्हें मैं नहीं जानती थी।

स्मृति-संकल्प यात्रा का फोल्डर पढ़ा। इसके बारे में मैं और जानना चाहती हूँ और इससे जुड़ना भी चाहती हूँ। इसके बारे में और जानकारियाँ देने का कष्ट करें।

नेहा, दिल्ली

"शिक्षा की कोई भी प्रणाली इस प्रकार की होनी चाहिए कि वह किसी राष्ट्र की मानसिक-आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके। भारत में हम लोग अपनी शिक्षा प्रणाली के दोषों से पूर्णतया परिचित हैं। यह शिक्षा प्रणाली हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं करती, वरन् यह एक बड़ा भारी नुकसान कर रही है। हमारे शिक्षितों को यह व्यक्तिगत और सामाजिक उत्तरदायित्व के भार को वहन करने में सर्वथा असमर्थ कर देती है।"

-राहुल सांकृत्यायन
('दिमागी गुलामी' से)

नया वर्ष
युवा दिलों के नाम
ज़िन्दा कौमों के नाम,
साहसिक यात्राओं के नाम,
सक्रिय ज्ञान के नाम,
न्याय-युद्ध में भागीदारी की
तत्परता के नाम,
सच्चे प्यार के नाम,
मानवता के भविष्य में
उत्कट आस्था के नाम!

अपनी ओर से

भ्रष्टाचार और पूँजीवाद : कुछ बुनियादी सवाल और कुछ बुनियादी बातें

गुज़रा साल केवल संसदीय राजनीति ही नहीं, पूरी पूँजीवादी व्यवस्था की असलियत के चौतरफा भाण्डाफोड़ का वर्ष रहा। विभिन्न चैनलों के स्टिंग ऑपरेशनों ने सांसदों-विधायकों की कमीशनखोरी-घूसखोरी और अयाशी के तथा सरकारी महकमों में व्याप्त भ्रष्टाचार के जीते-जागते प्रमाण पूरे देश की जनता के सामने पेश किये।

संसद को बहसबाजी का अड्डा और सुअरबाड़ा कहने पर अब शायद ही किसी को आपत्ति हो। लेकिन इस पूरे मामले की थोड़ी और गहराई में जाने पर यह साफ़ हो जाता है कि इन भाण्डाफोड़ों का मकसद पूँजीवादी व्यवस्था की सारी कुरूपताओं को सामने लाकर लोगों को इसके क्रान्तिकारी विकल्प के बारे में सोचने के लिए प्रेरित करना नहीं, बल्कि उन्हें एक बार फिर इस झूठी उम्मीद की गिरफ़्त में लेना है कि भ्रष्टाचार जैसी बुराइयों को नियंत्रित करके पूँजीवादी संसदीय व्यवस्था को जनहितकारी बनाया जा सकता है। सच्चाई यह है कि स्टिंग ऑपरेशनों के द्वारा विभिन्न चैनलों ने जो कुछ भी दिखाया, वह आम नागरिकों के लिए कोई नयी बात नहीं थी। बम्बइया फिल्मों की ही तरह इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ने व्यवस्था की एक असाध्य और जगजाहिर व्याधि को सनसनीखेज़ और बिकाऊ माल बनाकर पेश किया और सांसदों तथा भ्रष्ट अफसरों पर कार्रवाई के बाद बहुतेरे लोगों में यह भ्रम पैदा हुआ कि अब भ्रष्टाचार पर नियंत्रण के बाद काफ़ी-कुछ ठीक-ठाक हो जाएगा। यह वैसा ही भ्रम है जो कभी किसी शेषन-खैरनार या के. जे. राव की कार्रवाइयों से, कभी जे. पी. की सप्त क्रान्ति या वी. पी. सिंह के भ्रामक "आदर्शवाद" से, तो कभी उपभोक्ता जागरूकता आन्दोलन या सूचना के अधिकार के कानून बनने या किसी जनहित याचिका पर उच्चतम न्यायालय के निर्णय या फिर गैर-सरकारी संगठनों की सुधारवादी गतिविधियों से पैदा होता है। ये सभी उपक्रम पूँजीवादी व्यवस्था के दामन पर लगे खून और गन्दगी के दाग़-धब्बों को तरह-तरह के डिटरजेण्ट से साफ करने का काम करते हैं और बड़ी कुटिलता से लोगों को इसी व्यवस्था के दायरे में जीते हुए, सुधार की उम्मीदें पाले रहने के लिए प्रेरित करते हैं।

भ्रष्टाचार और अनैतिकता पूँजीवादी व्यवस्था की मूलभूत बीमारी नहीं बल्कि इसका एक 'बाई प्रोडक्ट' है। हर किस्म का पूँजीवाद मज़दूरों के अतिरिक्त श्रम को निचोड़कर मुनाफ़ा कमाने पर टिका होता है। इस प्रक्रिया में वह मज़दूरों की श्रम शक्ति को सस्ती से सस्ती दरों पर ख़रीदता है। मज़दूरों की श्रम शक्ति के बाज़ार मूल्य को ज़्यादा से ज़्यादा नीचे लाने के लिए वह भारी मेहनतकश आबादी को बेरोज़गार बनाकर सड़कों पर धकेल देता है और उन्नत मशीनों के जरिये कम से कम मज़दूर लगाकर ज़्यादा से ज़्यादा उत्पादन करके अपने मुनाफ़े की दर को लगातार बढ़ाने की कोशिश में लगा रहता है। पूँजीवाद अपनी स्वतःस्फूर्त गति से धनी-ग़रीब के अन्तर को बढ़ाता जाता है और बेरोज़गारी को बनाए रखता है। भुखमरी, कुपोषण, वेश्यावृत्ति आदि इसकी अपरिहार्य परिणति होते हैं। पूँजीवादी समाज में लोभ-लाभ और गलाकाटू प्रतिस्पर्द्धा की संस्कृति जनता को भी अपने प्रभाव में ले लेती है और इसके चलते पूँजीवादी लोभ-लाभ-लूट को नैसर्गिक मानवीय वृत्ति मानने की प्रवृत्ति, अलगाव की मानसिकता, सामाजिकता एवं सामूहिकता का निषेध, तरह-तरह की मानवद्रोही प्रवृत्तियाँ और मनोरोग आम हो जाते हैं। पूँजीवादी कला-साहित्य-संस्कृति और शिक्षा व्यवस्था का पूरा तंत्र भी इसमें अहम भूमिका निभाता है और लोगों में इस धारणा को मज़बूत बनाता है कि पूँजीवादी व्यवस्था का कोई विकल्प नहीं है।

पूँजीवादी उत्पादन की प्रबन्ध व्यवस्था के संचालन के लिए, उसकी सेविका राजनीतिक व्यवस्था के संचालन के लिए तथा उसे सैद्धान्तिक आधार देने के लिए पूँजीपति वर्ग मध्य वर्ग के शिक्षित लोगों के एक हिस्से को तरह-तरह की सुविधाएँ और विशेषाधिकार देकर उन्हें शारीरिक श्रम करने वालों से अलग करता है, उन्हें श्रम और श्रम करने वालों से नफ़रत करना और स्वयं को उनसे श्रेष्ठ समझना सिखाता है तथा उनके भीतर भी कई संस्तर बनाकर उन्हें खण्ड-खण्ड में बाँट देता है। यही नहीं वह मेहनतकशों को भी तरह-तरह से आपस में बाँट देता है। और उनके एक हिस्से को भी कुछ सुविधाओं के टुकड़े फेंककर व्यवस्थाधर्मी बना देता है।

इस तरह, पूँजीवादी वर्ग-व्यवस्था जो इतिहास का सबसे उन्नत वर्ग समाज और सबसे उन्नत शोषण-प्रणाली है, न केवल एक जटिल आर्थिक प्रणाली है, बल्कि एक जटिल और कुटिल राजनीतिक-सामाजिक-सांस्कृतिक-वैधिक-वैचारिक प्रणाली भी है। इसकी आत्मा को महान उपन्यासकार बाल्ज़ाक से शब्द उधार लेकर यूँ उद्घाटित किया जा सकता है : *"हर सम्पत्ति-साम्राज्य अपराध की बुनियाद पर खड़ा होता है।"* सवाल पूँजीवादी व्यवस्था में अपराध, भ्रष्टाचार और अनैतिकता का नहीं है। पूँजीवाद अपने शुद्धतम रूप में भी स्वयं एक अपराध है। वह स्वयं एक भ्रष्टाचार है। वह अपने आप में अनैतिक है। वह अपने शोषक चरित्र के बावजूद ऐतिहासिक तौर पर तब प्रगतिशील था जब उसने आम लोगों को साथ लेकर सामन्तवाद का ख़ात्मा किया, जब उसने तर्क और विज्ञान को आधार बनाकर मानववाद और जनवाद के विचार विकसित किये। फिर पूँजीपति वर्ग ने सत्तारूढ़ होते ही मुक्ति के दर्शन को तिलांजलि देकर जनता पर अपनी वर्गीय तानाशाही कायम की और उस पर संसदीय जनतंत्र की रेशमी चादर ओढ़ा दी। उसके बाद कुछ समय तक तो उसने उत्पादक शक्तियों का विकास कर इतिहास को आगे गति देने का काम किया, फिर वह स्वयं उनके पैरों की बेड़ी बन गया। फिर जैसे-जैसे समय बीतता गया, इसकी सारी विकृतियाँ और कुरूपताएँ अपनी स्वयंस्फूर्त गति से नग्नतम-वीभत्सतम रूपों में सामने आती चली गयीं। लेकिन पूँजीवादी व्यवस्था ने समय-समय पर इन विकृतियों को रोकने-ढँकने का एक आन्तरिक 'मैकेनिज़्म' भी विकसित किया है। समय-समय पर हर पूँजीवादी व्यवस्था में कुछ ऐसे नेता और सुधारक पैदा होते हैं या कुछ ऐसे कदम उठाए जाते हैं जो भ्रष्टाचार पर रोक लगाने और कुछ राजनीतिक-प्रशासनिक "सुधार" का काम करते हैं। इससे जनता एक बार फिर भ्रम में पड़ जाती है, क्रान्तिकारी परिवर्तन की तैयारी मद्धम पड़ जाती है और पूँजीवादी व्यवस्था की उम्र कुछ और बढ़ जाती है।

जो राजनेता, प्रशासक और बुद्धिजीवी पूँजीवादी व्यवस्था को चलाते हुए लुटेरों की चाकरी करते हैं और अपने लिए विशेषाधिकार और सुख-सुविधा अर्जित करते हैं वे भी अपनी "वैध" कमाई से सन्तुष्ट होने की बजाय हर सम्भव रास्ते से घूस,धोखाधड़ी और ठगी से मालामाल हो जाना चाहते हैं। लुटेरों की सेवा करते हुए वे नैतिक और ईमानदार भला हों भी क्यों? लुटेरे अपने सेवकों से यह उम्मीद भी कैसे कर सकते हैं? पूँजीवादी राजनीतिक व्यवस्था, अर्थतंत्र और प्रशासन तंत्र में भी यही भ्रष्टाचार जब चरम पर पहुँच जाता है और इससे तंग जनता की नफ़रत और गुस्सा जब व्यवस्था के लिए ख़तरा बनने लगता है तो समय-समय पर कुछ ऐसे नेता और "नायक" नैतिकता और सदाचार के "मसीहा" बनकर सामने आते हैं, न्यायपालिका ज़्यादा सक्रिय हो जाती है, कुछ कानून बनते हैं, सरकार कुछ कार्रवाई करती है और मीडिया जनहित की पैरोकारी का स्वांग भरती है। इन सबका उद्देश्य होता है स्वयं व्यवस्था के लिए संकट बन चुके भ्रष्टाचार पर कुछ अंकुश लगाना और जनता में यह भ्रम पैदा करना कि इस व्यवस्था में अभी सुधार की गुंजाइश बची हुई है। पर ये सारे उपाय अंशतः और अल्पकालिक रूप से ही प्रभावी होते हैं। जल्दी ही वेताल फिर डाल पर जा लटकता है।

पूँजीवादी समाज में "वैध" लूट के साथ अवैध लूट का अस्तित्व अपरिहार्य होता है। सफेद धन की अर्थव्यवस्था के साथ काले धन की अर्थव्यवस्था की मौजूदगी अपरिहार्य होती है। भ्रष्टाचार पूँजीवादी उत्पादन-तंत्र रूपी फैक्टरी के पिछवाड़े का गन्दा नाला है। पूँजीपति वर्ग चाहता है कि नेता, अफसर अपनी ऊँची तनख्वाहों और सुविधाओं से ही सन्तुष्ट रहें, व्यापारी कालाबाज़ारी न करें, सट्टाबाज़ार अनियंत्रित जुआघर का रूप न ले ले, काले धन की समानान्तर अर्थव्यवस्था न हो और कारखानों में मुनाफ़ा निचोड़ने का काम सुचारू रूप से चलता रहे। पर ये सारी प्रक्रियाएँ पूँजीवादी व्यवस्था में पूँजीपति वर्ग की इच्छा से स्वतंत्र, मौजूद रहेंगी और समय-समय पर स्वयं उसके लिए समस्या बनती रहेंगी।

एक भ्रष्टाचार-मुक्त पूँजीवाद की असम्भव-सी कल्पना कीजिए। ऐसे पूँजीवाद में भी मज़दूरों का शोषण होता रहेगा, उनके आन्दोलनों का दमन होता रहेगा, धनी-ग़रीब की खाई बढ़ती रहेगी, बेरोज़गारी बनी रहेगी, आम लोग जीने की बुनियादी सुविधाओं तक से वंचित रहेंगे, कुपोषण और वेश्यावृत्ति जैसे अभिशाप बने रहेंगे और प्रकृति का विनाश होता रहेगा। यानी एक भ्रष्टाचार-मुक्त पूँजीवाद भी आम जनता के जीवन की बुनियादी समस्याओं का हल नहीं है। हल एक ही है और वह है पूँजीवादी व्यवस्था को इतिहास की कचरा पेटी के हवाले करना और एक ऐसी व्यवस्था का निर्माण करना जिसमें उत्पादन मुनाफ़े के लिए नहीं, बल्कि सभी लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए हो, जिसमें उत्पादन-राजकाज और समाज के ढाँचे पर उत्पादन करने वाले लोग काबिज़ हों और फैसला लेने की ताकत उनके हाथों में हो। साम्राज्यवाद और पूँजीवाद की बेड़ियों को तोड़कर ही ऐसी सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक व्यवस्था का निर्माण किया जा कसता है।

राजनीति और प्रशासन में व्याप्त भ्रष्टाचार को दूर कर देने मात्र से ग़रीबी, असमानता, लूट और बेरोज़गारी दूर नहीं हो जाएगी। साम्राज्यवादियों और देशी पूँजीपतियों की लूट जब तक बनी रहेगी, ये समस्याएँ बनी रहेंगी। सच तो यह है कि पूँजीवादी व्यवस्था को कभी पूरी तरह से भ्रष्टाचार और सामाजिक बुराइयों से मुक्त किया ही नहीं जा सकता। जब ये चीज़ें अति पर पहुँचकर व्यवस्था के लिए ही सिरदर्द और संकट बन जाती हैं तो समय-समय पर पूँजीवाद स्वयं अपने सिद्धान्तकारों, शीर्ष राजनीतिक प्रतिनिधियों, न्यायपालिका और मीडिया को माध्यम बनाकर इनपर अंकुश लगाने का काम करती है। अपने दामन पर लगे दाग़-धब्बों को वह स्वयं समय-समय पर साफ़ करती रहती है तथा अपने खुले एवं गुप्त रोगों का इलाज करती रहती है। लेकिन आम मेहनतकश जनता और उसके जागरूक इंसाफ़पसन्द युवा सपूतों के सामने सवाल पूँजीवाद की बुराइयों के ख़ात्मे का नहीं है बल्कि स्वयं पूँजीवाद के ख़ात्मे का है जो अब स्वयं मानव-इतिहास की एक बुराई बन चुका है।

बीसवीं शताब्दी की सर्वहारा क्रान्तियों और समाजवादी प्रयोगों ने इस दिशा में इतिहास का पथ आलोकित किया था। लेकिन पूँजी की शक्तियों ने उन महान क्रान्तियों को पराजित करके इतिहास की प्रगतिकामी शक्तियों को पीछे धकेल दिया। इसी तथ्य की दुहाई देकर पूँजीवाद के भाड़े के प्रचारक और सिद्धान्तकार आज यह कहते नहीं थकते कि समाजवाद अव्यावहारिक

था इसलिए विफल हो गया, कि पूँजीवाद ही इतिहास की अन्तिम अवस्था है। लेकिन इतिहास का यह सबसे बड़ा झूठ है। प्रकृति की हर चीज़ और हर सामाजिक व्यवस्था की तरह पूँजीवाद भी अजर-अमर नहीं है। दास-प्रथा और सामन्तवाद के बाद जिस तरह पूँजीवाद आया, उसी तरह इसका भी स्थान समाजवाद लेगा। यदि समाजवाद नहीं तो फिर प्रकृति को तबाह कर पूँजीवाद के हाथों मानवता का विनाश–दूसरा विकल्प यही हो सकता है और तय है कि मानव जाति इस विकल्प को कदापित नहीं चुनेगी। विगत क्रान्तियों की हार "इतिहास का अन्त" नहीं थी। वह श्रम और पूँजी की शक्तियों के बीच विश्व ऐतिहासिक महासमर का मात्र एक चक्र थी। वह चक्र इतिहास की ह्रासमान शक्ति की विजय के साथ समाप्त हुआ और अब नयी सदी में पूरी दुनिया का परिदृश्य बताता है कि आने वाले दशकों में इस महासमर के दूसरे नये चक्र की शुरुआत अवश्यंभावी है। यूरोप में सामन्तवाद को निर्णायक शिकस्त देकर अपना विश्व-प्रभुत्व कायम करने में पूँजीवाद को लगभग चार शताब्दियों का समय लगा और इस दौरान उसे कई बार पराजित भी होना पड़ा। फिर सर्वहारा क्रान्ति के पहले संस्करण की पराजय से भला मायूसी कैसी? हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि समाजवादी क्रान्तियाँ केवल पूँजीवाद के विरुद्ध नहीं बल्कि चार हज़ार वर्षों पुरानी निजी स्वामित्व की व्यवस्था के समूचे इतिहास के विरुद्ध, समूचे वर्ग समाज के विरुद्ध केन्द्रित है। अतः जाहिर है कि ये जटिल क्रान्तियाँ हैं और इनकी प्रक्रिया लम्बी और चढ़ाव-उतार भरी होगी।

अब इक्कीसवीं शताब्दी की नयी समाजवादी क्रान्तियाँ पुरानी क्रान्तियों का अनुकरण करते हुए नहीं, बल्कि उनसे सीखते हुए, समाहार और आत्मालोचना करते हुए अपनी राह निकालेंगी। इन क्रान्तियों की सर्वाधिक उर्वर ज़मीन उन देशों में निर्मित हो रही है, जहाँ साम्राज्यवाद और देशी पूँजीवाद की सर्वाधिक लूट है, साथ ही जहाँ उत्पादक शक्तियाँ एशिया, अफ्रीका, लातिन अमेरिका के अन्य देशों की अपेक्षा अधिक विकसित हैं, तथा जहाँ तेज़ गति से पूँजीवादी जकड़बन्दी बढ़ रही है, जहाँ सर्वहारा की संख्या, शक्ति और चेतना लगातार तेज़ गति से बढ़ रही है। इन देशों में भारत एक प्रमुख देश है। साम्राज्यवाद-पूँजीवाद विरोधी नयी समाजवादी क्रान्तियों की परियोजना तैयार करने में भारत जैसे देशों के क्रान्तिकारियों की नयी पीढ़ी की भूमिका ऐतिहासिक होगी। लेकिन ऐसा स्वतः नहीं होगा, बल्कि इसे करना होगा।

ख़ासकर विगत पच्चीस-तीस वर्षों के दौरान साम्राज्यवाद की कार्यप्रणाली में, पूँजीवाद की उत्पादन एवं विनिमय प्रणाली में तथा राजनीतिक व्यवस्था में महत्वपूर्ण बदलाव आए हैं। उपनिवेशवाद-नवउपनिवेशवाद का दौर बीत चुका है। सामन्तवाद अधिकांश पूर्व उपनिवेशों में भी अवशेष मात्र में रूप में ही रह गया है। अब दुनिया में सर्वहारा वर्ग के नेतृत्व में चन्द एक देशों में ही राष्ट्रीय जनवादी क्रान्तियाँ सम्भावित हैं। तीसरी दुनिया में भी पिछड़े पूँजीवादी देशों की ही बहुसंख्या है जहाँ नये ढंग की समाजवादी क्रान्तियाँ ही सम्भावित हैं। इन नयी क्रान्तियों की तैयारियों और प्रयोगों में, लाज़िमी तौर पर कुछ अधिक समय लगेगा। पर यह मायूस होने की बात नहीं है। इससे हमारी व्यग्रता बढ़नी चाहिए। हमें जी-जान लगाकर इस काम में जुटना होगा।

भारत के क्रान्तिकारी छात्रों-युवाओं का भी यही ऐतिहासिक मिशन हो सकता है। उन्हें संसदीय वामपंथी भाण्डों-विदूषकों के बहकावे में नहीं आना होगा। उन्हें पूँजीवादी संसदीय राजनीति के हर विभ्रम से छुटकारा पाना होगा। साथ ही, उन्हें आनन-फानन में सिर्फ अपनी बहादुरी-कुर्बानी के बूते पर, बिना व्यापक मेहनतकश जनता को संगठित किये, हथियार उठाकर क्रान्ति कर देने की अतिउत्साही, अवैज्ञानिक व्यामोह की चपेट में आने से भी बचना होगा। यह "वामपंथी" दुस्साहसवादी जल्दबाजी भी दरअसल गहरे पैठे पराजयबोध की ही अभिव्यक्ति होती है। छात्रों-युवाओं की नयी क्रान्तिकारी कतारों को लकीरी की फकीरी से बचते हुए, नयी परिस्थितियों की नयी समझ के आधार पर नये सिरे से, अपने नये क्रान्तिकारी संगठन खड़े करने होंगे। और सर्वोपरि तौर पर अपने सहयात्रियों की संख्या बढ़ानी होगी, नयी भर्ती करनी होगी। उन्हें 'समान शिक्षा, सबको रोज़गार' के अपने बुनियादी अधिकार को लेकर लड़ते हुए अपनी तैयारी करनी होगी और साथ ही व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्ति का सन्देश ले जाना होगा, उनसे समरूप हो जाना होगा और उन्हें नयी लाइन पर संगठित करना होगा।

यही एकमात्र रास्ता है। और हमें इसी रास्ते पर आगे बढ़ना होगा।

नया वर्ष
नयी यात्रा के लिए उठे
पहले कदम के नाम,
सृजन की नयी परियोजनाओं
के नाम,
बीजों और अंकुरों के नाम,
उड़ने को आतुर
शिशु पंखों के नाम!

'इण्डियन आइडल' या 'इण्डियन ईडियट'

● प्रसेन, अजय

'मीडिया-बूम' आने के कारण भारत में रोज़ ही नये-नये चैनल आ रहे हैं। कुछ चैनल भारतीय मीडिया दिग्गज खोल रहे हैं तो वहीं विदेशी चैनलों ने भी अपने भारतीय संस्करण शुरू कर दिये हैं। भारत में नये-नये चैनलों के आने के साथ आपस में इनकी गलाकाटू प्रतियोगिता भी शुरू हो गई है। इस प्रतियोगिता ने अब इतना घिनौना और मानवद्रोही रूप धारण कर लिया है कि उसे शब्दों में बयान कर पाना मुश्किल है। इन चैनलों पर तरह-तरह के कार्यक्रम प्रसारित हो रहे हैं जो किसी भी अन्य क्षेत्र से बेहतर तरीके से पूँजीवादी संस्कृति के मानवद्रोही चरित्र, दीवालियेपन और संवेदनहीनता को सामने लाते हैं।

मिसाल के तौर पर, हम यहाँ दो प्रमुख 'ट्रेण्ड्स' का ज़िक्र करना चाहेंगे। एक रुझान है विभिन्न चैनलों पर शुरू हुई प्रतिभा की खोजें (?)! दूसरा रुझान है विभिन्न समाचार चैनलों पर शुरू हुए सनसनीखेज अपराध सम्बन्धी कार्यक्रम।

सबसे पहले हम प्रतिभा की खोज वाले कार्यक्रमों का जायज़ा लेते हैं। इन कार्यक्रमों में जो दो कार्यक्रम सबसे ज़्यादा प्रसिद्ध हुए हैं, वे हैं 'इण्डियन आइडल' और 'फेम गुरुकुल'। इण्डियन आइडल दरअसल एक अमेरिकी टेलीविज़न टैलेण्ट हण्ट शो की तर्ज़ पर बना है। दरअसल, इसका पूरा सेट, असफल प्रतिभागियों का अपमान करने के तौर-तरीके, फिर उन्हें रोते हुए दिखाने का तरीका, ये सब उसी अमेरिकी शो की तर्ज़ पर किया गया है। अमेरिकन आइडल और इण्डियन आइडल जैसे कार्यक्रमों का एक ख़ास मक़सद होता है। जिन समाजों में गैर-बराबरी बेहद ज़्यादा हो, अवसरों की समानता न हो, और एक असमानतापूर्ण प्रतियोगता होती हो, वहाँ सक्षम लेकिन संसाधनहीन नौजवानों में एक असन्तोष होता है। और यह असन्तोष व्यवस्था और सामाजिक ढाँचे में लोगों के यक़ीन को कमज़ोर बनाता है। ऐसे में अगर कुछ ऐसी मिसालें प्रायोजित तौर पर बना दी जाएँ जिन्हें देखकर आम घर का नौजवान भी दिनों-रात मचलता रहे तो सामाजिक ढाँचे के प्रति लोगों की रही-सही आस्था को बचाने का प्रयास किया जा सकता है। दूसरी बात, इन प्रतियोगिताओं में हिस्सा लेना कोई हँसी-खेल नहीं है। जजों द्वारा आपकी परख तो बाद में होती है। पहले आपको ढेर सारे एसएमएस और फोन करने पड़ते हैं, वह भी किसी विशेष मोबाइल फोन सेवा कम्पनी के ही फोन से! यानी के आपके पास अगर मोबाइल नहीं है तो पहले आप मोबाइल ख़रीदिये; मोबाइल है, लेकिन वह विशेष मोबाइल सेवा नहीं, तो पहले एक और मोबाइल सेवा लीजिए; उसके बाद भी इस बात की कोई गारण्टी नहीं होती कि आप प्रतियोगिता में शामिल हो ही पाएँगे। चलिये मान लिया कि आप शामिल हो गए, तो भी विजेता बनने के लिए कुछ विशेष शर्तें हैं। विजेता का फैसला इन कार्यक्रमों में दर्शकों द्वारा भेजे गए एसएमएस के द्वारा होता है। अब जो लड़का बिहार, उत्तर प्रदेश, या उड़ीसा जैसे ग़रीब प्रदेश से गया है वह अच्छा गाते हुए भी शायद हार जाए क्योंकि मुम्बई के लड़के को ज़्यादा दर्शकों के एसएमएस मिलेंगे, क्योंकि पूरे बिहार में उतने मोबाइल फोन नहीं जितने अकेले मुम्बई में हैं, महाराष्ट्र की तो बात ही छोड़ दें। लेकिन इस पूरे खेल में गायन में कोई भी जीते विनर विभिन्न कम्पनियाँ ही होती हैं। मिसाल के तौर पर, एक प्रतियोगिता के महज अन्तिम राउण्ड में भेजे गए एसएमएस के द्वारा एयरटेल ने 6 करोड़ रुपये का शुद्ध लाभ कमाया। उसी प्रकार इन कार्यक्रमों को प्रसारित करने वाले चैनलों का मुनाफ़ा भी करोड़ों में था। फेम गुरुकुल दूसरा ऐसा कार्यक्रम है। कोई सोच सकता है कि गुरुकुल तो पुराने ज़माने में हुआ करते थे जहाँ राजाओं-महाराजाओं के बच्चे शिक्षा लेने जाया करते थे। पर आज सड़ती-बदबू मारती पूँजीवादी संस्कृति की कोख से नये गुरुकुल पैदा हुए हैं। यह कार्यक्रम भी उसी तर्ज़ पर बना है जिस पर कि इण्डियन आइडल। इस कार्यक्रम में फूहड़ता, उपभोक्तावादी बीमार मानसिकता के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता। अजीबो-गरीब शक्लें बनाए, कानों में कुण्डल डाले, बात-बात पर लटके-झटके मारने वाले फेमगुरू किसी और को क्या सिखा सकते हैं? ये बेहद श्रेष्ठतावादी होते हैं। जब मुम्बई का एक आम आदमी इन भड़ैंतों की मजलिस में पहुँच गया तो इन फेम गुरुओं ने न सिर्फ उसका मज़ाक उड़ाया बल्कि उसे मूँगफली बेचने की सलाह दी। दरअसल, इस तरह के कदम गरीब लड़के-लड़कियों को कुण्ठित कर देने के लिए उठाए जाते हैं। जो भी हो, इतना तो साफ़ हैं कि प्रतिभा ढूँढने की इस नौटंकी से प्रतिभाओं की असली खोज नहीं हो सकती। प्रतिभा को स्थान देने का माद्दा उसी व्यवस्था में होता है जो मानवीय गरिमा का सम्मान करना जानती हो। जो यह समझती हो कि हर मनुष्य में कोई न कोई क्षमता ज़रूर होती है। और अधिकांश क्षमताओं का रिश्ता उस परिवेश से होता है जिसमें किसी व्यक्ति की परवरिश हुई होती है। ग़रीब घर में पलने बढ़ने वाले व्यक्ति को जाहिरा तौर पर ज़्यादा हुनर विकसित करने का मौका नहीं मिल पाता क्योंकि वह तो होश सम्भालने से पहले ही घर की जीविका सम्भालने लगता है। इसलिए आम घर के नौजवानों को इन नौटंकियों के चक्कर में नहीं फँसना चाहिए और अपना समय हालात बदलने की तैयारियों को देना चाहिए।

दूसरा रुझान है समाचार चैनलों पर आने वाले अपराध-आधारित कार्यक्रम का। ऐसे कार्यक्रमों की तो ऐसी बाढ़ आई हुई है कि क्या कहने! वारदात, सनसनी, मेट्रो क्राइम, क्राइम वॉच, मैं भी जासूस, अपराधी कौन, एफआईआर, आदि जैसे कार्यक्रम हर समाचार चैनल पर प्रसारित हो रहे हैं। इनकी प्रस्तुति

(पेज 9 पर जारी)

खुशबू के बयान और मेरठ पुलिस द्वारा प्रेमी युगलों पर हमले के बहाने

भारतीय समाज और जनवाद पर कुछ विचार

• अभिनव

हाल ही में कुछ घटनाएँ हुईं जो किसी भी जनवादी सोच रखने वाले भारतीय नागरिक के लिए काफ़ी चिन्तित कर देने वाली थीं। पहली घटना तो दक्षिण भारतीय अभिनेत्री खुशबू के बयान पर होने वाला हंगामा था। दूसरी घटना मेरठ में पुलिस द्वारा चलाया गया तथाकथित 'ऑपरेशन मजनूँ' था। ये दोनों घटनाएँ कुछ महत्वपूर्ण विचार-बिन्दुओं पर सोचने के लिए मजबूर करती हैं। क्या हम एक जनतांत्रिक समाज में जी रहे हैं? क्या संविधान हमें स्वतंत्रतापूर्वक अपने विचार अभिव्यक्त करने की जो आज़ादी देता है, वह सिर्फ कागज़ी है? क्या यह समाज दो वयस्क स्त्री और पुरुष को प्रेम करने या अपनी मर्ज़ी से मिलने और पार्क में साथ बैठने तक की इजाज़त नहीं देगा? कुल मिलाकर क्या भारत एक जनतांत्रिक देश है? और बस ये ही घटनाएँ नहीं हैं। तमाम ऐसी घटनाएँ मेरठ, सहारनपुर, हरियाणा आदि जैसी जगहों पर घटती रहती हैं। 'मॉरल पुलिसिंग' का सवाल कोई छोटा सवाल नहीं है।

कहने को तो भारतीय संविधान हम सबको अपने विचार अभिव्यक्त करने की पूरी आज़ादी देता है, लेकिन क्या उसका कोई अर्थ है?

ऐतिहासिक तौर पर, जनवाद का जन्म पूँजीवाद के साथ हुआ। पश्चिम में पूँजीवाद की विजय के साथ ही पूँजीवादी जनवाद आया। लेकिन बुर्जुआ क्रान्तियों से पहले ही समाज में जनवाद के बीज पड़ चुके थे। क्रान्ति के बाद पूँजीपति वर्ग ने जनता के साथ गद्दारी करते हुए जनवाद को पूँजीपति वर्ग तक सीमित कर दिया। वैसे भी जनवाद को औद्योगिक पूँजीवाद ने जन्म दिया था। औद्योगिक पूँजीवाद में वह गतिशीलता मौजूद थी जो जनवाद दे सकती थी। दूसरी बात यह कि औद्योगिक पूँजीवाद के विकास के लिए जनवाद की ज़रूरत भी थी। लेकिन अब जब कि औद्योगिक पूँजी चालक की भूमिका छोड़कर कण्डक्टर की भूमिका में आ चुकी है, और वित्तीय पूँजी के रूप में एक अनुत्पादक शक्ति ही चालक की गद्दी पर आ बैठी है तो उससे जनवाद की उम्मीद करना बेकार है। वित्तीय पूँजी के वर्चस्व में आने के साथ ही पश्चिमी देशों में भी जनवाद का क्षरण शुरू हो गया। पूँजीवाद में दो गतियाँ साथ-साथ मौजूद रहती हैं। एक तो फौरन किसी भी तरह मुनाफ़ा कमा लेने की गति होती है जो जनवाद को क्षरित करती रहती है; और दूसरी दीर्घकालिक गति होती है जो सीमित जनवाद को कायम रखती है क्योंकि जनवाद को कायम रखना पूँजीवाद को चलाने के लिए भी ज़रूरी है। इस तरह जनवाद को लगातार सीमित करते रहने वाली और इस प्रक्रिया को धीमा करने वाली प्रक्रियाएँ साथ-साथ चलती रहती हैं। लेकिन पश्चिमी समाजों में राज्य द्वारा दिए जाने वाले जनवादी अधिकारों के क्षरण के बावजूद जनता के बीच लोगों के आपसी रिश्तों में जनवाद कायम रहा। उसकी वजह थी इन समाजों का क्रान्तियों के जरिए पूँजीवाद में प्रवेश। क्रान्तियों के कारण इन समाजों का एक स्वस्थ विकास हुआ।

लेकिन भारत और तीसरी दुनिया के कई देश जहाँ क्रमिक विकास के जरिए पूँजीवाद आया वहाँ तमाम विकृतियाँ पैदा हुईं। ये समाज क्रान्ति की उथल-पुथल से होकर नहीं गुज़रे। ऐसा नहीं है कि भारत में स्वस्थ विकास नहीं हो सकता था। भारत में तो दरअसल स्वस्थ पूँजीवादी विकास की प्रक्रिया और उसके लिए सामाजिक आन्दोलन शुरू भी हो चुके थे। भक्ति आन्दोलन को यूरोप में चले सुधार आन्दोलनों का समानान्तर कहा जा सकता है। लेकिन अभी यह प्रक्रिया शुरू ही हुई थी कि अंग्रेज़ों का आगमन हुआ और कुछ ही समय बाद भारत एक उपनिवेश बन गया। भारत में एक आरोपित सामाजिक संरचना स्थापित हो गई। साम्राज्यवादी परिवेश में उपनिवेशवाद के गर्भ से एक रुग्ण, विकलांग और बौना पूँजीवाद पैदा हुआ। लेकिन यह पूँजीवाद काफी चालाक भी था। इसने उपनिवेशवाद-विरोधी संघर्ष में कभी जनता की पहलकदमी को निर्बन्ध नहीं किया। क्योंकि वह डरता था कि उपनिवेशवाद-विरोधी संघर्ष कहीं एक जनक्रान्ति में न तब्दील हो जाए। ऐसा पूँजीवाद जो जनवाद दे सकता था, वह भी लाज़िमी तौर पर बौना और विकलांग जनवाद ही होगा। समाज में कोई क्रान्तिकारी छलांग न लगने के कारण एक अतीतोन्मुखता पैदा हुई और वह भी ऐसी अतीतोन्मुखता जो अतीत के बारे में, प्राचीन भारत की वास्तविक परम्पराओं के बारे में कुछ नहीं जानती। आज़ादी के बाद जो व्यवस्था आई, दरअसल वह एशियाई निरंकुशता और विश्व पर प्रभुत्व कायम किये पूँजीवाद का एक संलयन (फ्यूज़न) थी। भारत में फासीवाद का सामाजिक आधार भी यह निरंकुशता ही पैदा करती है। भारत में फासीवाद का एक सामाजिक आधार है, यह कोई मनोरोगियों की भीड़ मात्र नहीं है। क्रान्ति के फलस्वरूप पूँजीवाद न आने के कारण भारतीय समाज में पश्चिमी समाज की तरह जनवादी परम्पराएँ नहीं हैं।

नया वर्ष
वर्तमान की अँधेरी कोख में
पलती उम्मीदों के नाम!

यही कारण है कि जब मेरठ पुलिस प्रेमी युगलों को गांधी पार्क में बेइज्ज़त करते हुए पीट रही थी, तो कुछ लोग ऐसे भी थे, जो कह रहे थे कि 'हाँ साहब! इन लौण्डे-लौण्डियों ने तो हद ही कर दी थी!'; यही कारण है कि जब खुशबू ने विवाहपूर्व सेक्स पर अपने निजी विचार व्यक्त किये तो उन लोगों ने भी कोर्ट में उन पर चप्पल और सड़े अण्डे फेंके जिन्होंने खुशबू के नाम पर वहाँ मन्दिर बनवा रखा है; यही कारण है कि जब कोई प्रेमी युगल मेरठ या हरियाणा से फरार हो जाता है तो उन्हें खोजकर, काटकर सरेआम पेड़ पर लटका दिया जाता है।

इसके ख़िलाफ़ व्यक्तिगत विद्रोह तो होते हैं; कई नौजवान विद्रोह-स्वरूप समाज के तौर-तरीकों के विरुद्ध अपनी जीवनशैली को बदलकर कुछ कदम उठाते हैं। लेकिन ऐसी कोई चिन्ता नहीं दिख रही है कि भारतीय समाज में ऐसे अजनतांत्रिक माहौल में जी पाना सम्भव कैसे होगा? आखिर हिन्दुस्तान ऐसा समाज कब बनेगा जिसमें हर व्यक्ति को अपनी मर्ज़ी से जीने का हक़ होगा?

यह देश भी ऐसा है जहाँ इन रूढ़ियों और ढकोसलों को तोड़ने के लिए कदम उठाने पर किसी बुद्धिजीवी को ब्रूनो की तरह जलाया नहीं जाएगा या गैलीलियो की तरह जेल में नहीं डाल दिया जाएगा। लेकिन यहाँ के वामपंथी बुद्धिजीवी तक ऐसे हैं कि ब्राम्हण बुलाकर द्वार-पूजा, कन्यादान, गृह प्रवेश आदि कराते हैं। जिस देश के जनपक्षधर होने का दावा करने वाले लेखक और बुद्धिजीवी तक इतने दकियानूस, कायर, गलीज, पतित, पाखण्डी और ढोंगी हों, उनके मुँह से लोर्का, गोर्की, हिकमत, न्यूगी, और नेरूदा का नाम सुनकर शरीर में शर्म से चुनचुनी होने लगती है।

जनवाद का अर्थ महज किसी से प्यार और सरोकार रखना नहीं होता है। इसका अर्थ होता है कि दुश्मन की भी मानवीय गरिमा का सम्मान करना। यहाँ वाल्तेयर और दिदेरो के प्रकरण का ज़िक्र किया जा सकता है, जो एशियाई निरंकुशता और जनवाद की भावना के बीच के फर्क को साफ़ कर देता है। जब चर्च दिदेरो की किताबें जला रहा था, तो वाल्तेयर ने दिदेरो के समर्थन में आते हुए कहा, "मैं तुम्हारे विचारों से कतई सहमत नहीं हूँ दिदेरो। लेकिन तुम अपनी बात कह सको, इसके लिए मैं अपनी जान भी दे सकता हूँ।" और यहाँ किसी बात पर असहमत होने पर पीटा जाता है, जान ले ली जाती है, बेइज़्ज़त किया जाता है, और सड़े अण्डे और चप्पलें फेंकी जाती हैं।

लेकिन क्या यह सूरत बदली जा सकती है? क्या भारत में भी ऐसा समाज बनाया जा सकता है, जहाँ एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की मानवीय गरिमा, उसके विचारों का सम्मान करता हो; जहाँ प्रेम करने पर प्रेमी युगलों को गंड़ासे से काटकर टाँगा न जाता हो? जी हाँ, इतिहास के इस बोझ को उतार फेंकना नामुमकिन होता तो यह लेख लिखना महज एक बौद्धिक शगल होता। अब सवाल यह है कि यह कैसे हो सकता है?

जवाब एक ही है। ऐसा समाज बनाने और ऐसी संस्कृति बहाल करने का काम नौजवान ही करेगा। ऐसा समाज एक सामाजिक-आर्थिक क्रान्ति के जरिये ही आ सकता है। लेकिन इस तथ्य पर बल देते हुए यह भी याद रखना होगा कि सांस्कृतिक

(पेज 44 पर जारी)

विश्व पटल पर

इराक़ी नागरिकों पर अमेरिका के एक और वहशियाना जुल्म का खुलासा

● पवन

अभी दुनिया अमेरिकी और ब्रिटिश सेना अधिकारियों द्वारा इराक़ी कैदियों पर किए गए अमानवीय जुल्मों की तस्वीरों को भूल भी नहीं पाई थी कि अमेरिका के वहशीपन की एक नई मिसाल का खुलासा हो गया। दुनिया भर में "जनतंत्र, मानवाधिकारों आदि के इस महानतम रक्षक" का यह नया कारनामा भी दिल दहला देने वाला है। जिन रासायनिक और जैविक हथियारों की खोज करने के नाम पर अमेरिका इराक़ में घुसा था, वे तो कहीं नहीं मिले; हाँ, यह रहस्य ज़रूर खुल गया कि रासायनिक हथियारों को ढूँढने के लिए इराक़ पर हमला करने वाले अमेरिका ने इराक़ी बच्चों, महिलाओं और पुरुषों पर जमकर रासायनिक हथियारों का इस्तेमाल किया।

यह रहस्योद्घाटन इटली के सरकारी टीवी कार्यक्रम के दौरान 22 नवम्बर को एक डॉक्यूमेंट्री फिल्म द्वारा किया गया। इटली के एक भूतपूर्व नौसेना अधिकारी जेफ एंगेलहार्ट ने इस डॉक्यूमेंट्री में सफेद फास्फोरस बमों के इस्तेमाल और उनकी विनाशक क्षमता का ब्यौरा दिया। उन्होंने बताया कि उन्होंने खुद बमबारी के बाद बच्चों और महिलाओं के जले हुए शरीरों को देखा था। उन्होंने कहा, "मैंने देखा कि बच्चों और महिलाओं के शरीर जलकर झुलस गए हैं। सफेद फास्फोरस किसी को नहीं बख़्शता। बम फूटने के बाद वायुमण्डल में एक बादल-सा छा जाता है और 150 मीटर के दायरे में हरेक आदमी और जानवर को भस्म कर डालता है। यह तब तक जलता है जब तक कि यह ख़त्म न हो जाए। यह इतना घातक होता है कि हड्डियों तक को एकदम जला डालता है।"

तस्वीरें दिखाए जाने के कारण अमेरिकी साम्राज्यवादी लफ़्फ़ाज़ इस बात से सीधे तो मुकर नहीं सकते थे। इसलिए अमेरिकी सेना की पत्रिका 'फील्ड आर्टिलरी' के मार्च 2005 के अंक के एक लेख में सफेद फास्फोरस की बात स्वीकारी गई लेकिन साथ में पेण्टागन से जारी सरकारी बयान में यह झूठ गढ़ दिया गया कि इसका इस्तेमाल एक पारम्परिक युद्ध सामग्री के रूप में हुआ और इसका इस्तेमाल रात के समय दुश्मनों के ठिकानों का पता लगाने के लिए रोशनी करने के लिए किया गया था न कि दुश्मन के सिपाहियों पर। पहले तो पेण्टागन सफेद फास्फोरस के इस्तेमाल पर अनभिज्ञ बन रहा था, फिर उसे मानना पड़ा, फिर उसने हेकड़ी दिखाते हुए कहा कि अमेरिका ने युद्ध में ऐसे किसी भी हथियार का इस्तेमाल नहीं किया जो अन्तर्राष्ट्रीय कानून द्वारा प्रतिबन्धित हो। ऐसा उसने इसलिए भी कहा क्योंकि 1980 में हुए एक समझौते के अनुसार सघन आबादी वाले क्षेत्रों में सफेद फास्फोरस के प्रयोग पर पाबन्दी लगा दी गई थी, ब्रिटेन ने तो इस पर दस्तख़त कर दिये थे लेकिन अमेरिका ने नहीं किये थे।

युद्ध में इराक़ी जनता पर रासायनिक हथियारों का इस्तेमाल अमेरिकी वहशियों के लिए कोई नई बात नहीं थी। इससे पहले वियतनाम में भी अमेरिका में सैकड़ों रासायनिक हथियारों का प्रयोग किया था। नापाम बम, एजेण्ट ऑरेंज जैसे तमाम प्रतिबन्धित हथियारों का अमेरिका ने वियतनाम में प्रयोग किया था। एजेण्ट ऑरेंज एक ज़हर होता है जो 28 किस्म की बीमारियों को पैदा करता है। यह डाईऑक्सिन होता है। वियतनाम में उस समय 500,000 लोग इस ज़हर के इस्तेमाल से मरे थे और 650,000 लोगों में अभी भी इस ज़हर से पैदा हुए मानसिक और शारीरिक विकार पाए जाते हैं। इससे पहले जापानी जनता पर नाभिकीय हमला जिसका कोप वह अभी तक भोग रही है, भी अमेरिकी बर्बरता की एक मिसाल है। कोरिया में अमेरिका ने जो ताण्डव मचाया था वह भी किसी से छिपा नहीं है।

युद्ध में घातक रासायनिक हथियारों के इस्तेमाल के बाद इराक़ी जनता के भीतर लगातार पनपते आक्रोश को दबाने के लिए जुल्म, अत्याचार, दमन और उत्पीड़न की कोई कसर अमेरिकी बर्बरों ने नहीं छोड़ी है। इराक़ की अबू गरेब जेल और ग्वान्तानामो बे जेल वे नाम हैं जो मानवता को शर्मसार कर देने वाली यातनाओं से पहचाने जाने लगे हैं। लेकिन लगातार जारी इराक़ी जनसंघर्ष को दबाने में अमेरिकी साम्राज्यवादी नाकाम रहे हैं। उल्टे यह प्रतिरोध अमेरिका के लिए नाक की फुंसी बन गया है। अमेरिका इराक़ में कुछ उसी तरह फँस गया है जैसे वियतनाम में फँसा था। गले की हड्डी, न निगलते बने न उगलते। इराक़ ही क्यों, पूरा अरब क्षेत्र अमेरिका के ख़िलाफ़ नफ़रत की आग में धधक रहा है और इस बात की उम्मीद की जा सकती है कि अरब अमेरिका के लिए इक्कीसवीं सदी का वियतनाम बन जाएगा।

आज भले ही विश्व पटल पर ये साम्राज्यवादी एकजुट दिखलाई पड़ रहे हों, लेकिन ये जनता के आक्रोश और गुस्से के बारूद को फटने से रोक नहीं पाएँगे। इनके जुल्म और अत्याचारों से त्रस्त दुनिया की अवाम चाहे वह इराक़ी हो, फ़िलिस्तीनी हो या लातिन अमेरिकी, वह अपने मुक्ति संघर्षों के कारवाँ के सैलाब को एक प्रचण्ड तूफान में ज़रूर बदलेगी जिसमें मानवता के हत्यारों के हथियारों के बड़े से बड़े जखीरे तहस-नहस हो जाएँगे।

'इण्डियन आइडल' या 'इण्डियन ईडियट'

(पेज 6 से जारी)

भी ग़ज़ब तरीके से होती है। एक रहस्यमय, गाढ़ी सी पृष्ठभूमि के आगे एक अजीबो-गरीब फिल्मी स्टाइल में हुलिया बनाए कोई व्यक्ति आता है (जो खुद अपराधी ज्यादा लगते हैं) और पता नहीं कैसी घटिया सी आवाज़ बनाकर बोलना शुरू करते हैं, कि भयंकर जुगुप्सा पैदा होती है। लेकिन सबसे गम्भीर बात तो यह है कि किसी भी प्रकार के अपराध के ब्यौरे को कुछ इस तरह पेश किया जाता है कि वह मनोरंजक बन जाए, अक्सर अपराध को नाटक के तौर पर पर्दे पर उतारा जाता है। एक दूसरे को पीछे छोड़ने की होड़ में ये चैनल किसी भी हद तक नीचे गिरने को तैयार हैं। जैसा कि मीडिया की दुनिया में एक कहावत चलती है, समाचार चैनलों की दुनिया तीन 'सी' के बूते चल रही है—क्रिकेट, क्राइम, सिनेमा। राजनीति में जनता की दिलचस्पी ख़त्म होती जा रही है। ऐसे में बेचने को कुछ तो चाहिए ही। तो अपराध से बेहतर माल और क्या हो सकता है? एक चैनल ने हत्या, बलात्कार, और डकैती जैसे मामलों पर एक गेम शो ही बना दिया है। इस कार्यक्रम में आपको वारदात दिखलाई जाती है और फिर पूछा जाता है कि मुजरिम कौन है? अगर आपने सही गेस मारा तो बस, गिफ्ट हैम्परों की बरसात। यानी अपनी अमानवीयता और संवेदनहीनता में अब ये चैनल दर्शकों को भी भागीदार बना रहे हैं। इस तरह की घटनाएँ अब चिन्ता या दुख का विषय नहीं होंगी बल्कि सट्टेबाजी का विषय बन जाएँगी। उसी तरह एक ट्रेण्ड है मानवीय त्रासदी की घटनाओं को 'रियैलिटी शो' के रूप में पेश करना। हाल ही में एक चैनल ने पूरे गुड़िया प्रकरण को इसी तरह पेश किया था। उसके बाद एक वृद्धा को उसके बेटे और बहू द्वारा दस साल तक बन्दी बनाकर रखने के मामले को भी इसी रूप में पेश किया गया। इस प्रकार के तरीकों से मनोरंजन की आदत डालकर मीडिया लोगों को परपीड़न सुख का आदी बना रहा है। ऊपर से तो आदमी 'उफ! उफ!' करता है, लेकिन अन्दर ही अन्दर एक ख़ास तरह की गुदगुदी और सनसनी का भी अनुभव करता है।

यह संस्कृति तेज़ी से फैल रही है और यह बेहद चिन्ता का विषय है। मीडिया की भूमिका हर जगह मूक दर्शक की भी नहीं है, बल्कि अपराध को बेचने और उसका मज़ा लेने वाली की है। लोगों को बताया जा रहा है कि यह मत सोचो कि तुम्हारी ज़िन्दगी की समस्याएँ क्या हैं, 22 करोड़ बेरोज़गारों का क्या होगा, या भुखमरी से मरते बच्चों का क्या होगा; यह सोचो कि अमिताभ की बीमारी क्या है, गांगुली को टीम में लेना चाहिए या नहीं। यानी या तो सोचो मत या प्रायोजित ढंग से सोचो!

ऐसे अपसंस्कृति और संवेदनहीनता के घटाटोप में यह सोचना होगा कि स्वस्थ, संवेदनशील और जनपक्षधर संस्कृति के कारगर विकल्प कैसे तैयार किए जाएँ और संवेदनशीलता की हत्या के हर प्रयास को अपने सांस्कृतिक माध्यमों से बेकार किया जाय।

नया वर्ष

जीवन, संघर्ष और सृजन के नाम

स्वप्नों, संकल्पों और

आशाओं के नाम!

विशेष लेख

भगतसिंह की वैचारिक विरासत और हमारा समय

***भगतसिंह और उनके साथियों के सम्पूर्ण उपलब्ध दस्तावेज़'** पुस्तकाकार पहली बार **राहुल फाउण्डेशन**, लखनऊ से प्रकाशित हुए हैं। इस ऐतिहासिक प्रकाशन की जो भूमिका **सत्यम** ने लिखी है वह अपने आपमें भगतसिंह और उनके साथियों की विरासत का एक बेहतरीन परिचय है। भगतसिंह और उनके विचारों की प्रासंगिकता को यह भूमिका प्राधिकार के साथ स्थापित करती है और उनके विचारों को आगे बढ़ाने के बारे में भी यह भूमिका हमें कुछ महत्वपूर्ण विचार-बिन्दु देती है। हम इस भूमिका को यथावत यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं। —सम्पादक*

"भगतसिंह पर ही इतना ज़ोर क्यों?"—इतिहास के एक प्रतिष्ठित विद्वान ने पिछले दिनों पूछा। उनका कहना था कि देश के हालात आज इतने बदल चुके हैं कि भगतसिंह ने जो कुछ भी लिखा-सोचा और बयान दिया, वे आज हमारे लिए मार्गदर्शक नहीं हो सकते। फिर क्या यह महज़ भावनाओं, भावुकता या उत्तेजना के सहारे इतिहास-निर्माण का प्रयास नहीं है, क्या यह भी नायक-पूजा का एक उपक्रम नहीं है?

प्रश्न को सिरे से ख़ारिज नहीं किया जा सकता था। अन्य प्रकाशनों और क्रान्तिकारी राजनीतिक संगठनों को जाने दें, विगत एक दशक के दौरान भगतसिंह और उनके साथियों के महत्वपूर्ण लेखों-वक्तव्यों-पत्रों को अलग-अलग, और संकलनों के रूप में, हम लोग लगातार छापते रहे हैं और भगतसिंह की दुर्लभ जेल नोटबुक को पहली बार हिन्दी में छापने और अब तक उसके कई संस्करण निकालने का काम भी हम लोगों ने ही किया। और अब यह पुस्तक—**'भगतसिंह और उनके साथियों के सम्पूर्ण उपलब्ध दस्तावेज़'**। कहीं उक्त प्रोफ़ेसर साहब का प्रश्न सही तो नहीं था? हम समझते हैं, उसी प्रश्न के उत्तर में इस पुस्तक के प्रकाशन का औचित्य-प्रतिपादन—इसके ऐतिहासिक महत्व और अनन्य उपयोगिता का तर्क निहित है।

यह सही है कि भगतसिंह और उनके साथियों के (और निस्सन्देह उनमें अग्रणी विचारक क्रान्तिकारी भगतसिंह ही थे) विचार पक्ष के बारे में, देश की शिक्षित लोगों और युवा पीढ़ी के बीच अपरिचय-अज्ञान की एकदम वैसी स्थिति नहीं है जैसी आज से पच्चीस-तीस वर्षों पहले थी। भगतसिंह एक बेहद प्रतिभाशाली और अध्ययनशील क्रान्तिकारी थे, यह जानकारी तो उन्हें भी थी जिन लोगों ने **'हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन'** में भगतसिंह के साथ काम कर चुके क्रान्तिकारी जितेन्द्रनाथ सान्याल की पुस्तक 'भगतसिंह' और शिव वर्मा, अजय घोष, भगवानदास माहौर, सदाशिव मलकापुरकर, यशपाल आदि साथियों के तथा सोहनसिंह जोश, राजाराम शास्त्री आदि समकालीनों के भगतसिंह विषयक संस्मरण पढ़े थे। गोपाल ठाकुर की एक छोटी सी पुस्तिका भी पचास के दशक में ही प्रकाशित हो चुकी थी, जिसमें एच.एस.आर.ए. और नौजवान भारत सभा के घोषणापत्र तथा अदालत में दिये गये बयानों के आधार पर भगतसिंह के गहन वैचारिक पक्ष और वैज्ञानिक समाजवाद की ओर उनके झुकाव के बारे में लिखा गया था। लेकिन उस समय भी नीचे से लेकर ऊपरी कक्षाओं तक की पाठ्यपुस्तकों और स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास की सबसे स्थापित पुस्तकों में एच.एस.आर.ए. और भगतसिंह व उनकी पीढ़ी के क्रान्तिकारियों का उल्लेख अति संक्षेप में, मात्र राष्ट्रवादी सशस्त्र क्रान्तिकारी धारा की एक कड़ी के रूप में ही होता था। एच.एस.आर.ए. के क्रान्तिकारी और विशेषकर भगतसिंह किस प्रकार समाजवाद को आदर्श मानने के बाद वैज्ञानिक समाजवाद का गहन अध्ययन कर रहे थे और किसानों-मज़दूरों के व्यापक जनसंगठन खड़े करने के बारे में सोच रहे थे, इसका अकादमिक इतिहासकारों की पुस्तकों में उल्लेख तक नहीं होता था और चन्द-एक शोध पत्रों और शोध-प्रबन्धों के अपवादों को छोड़ दें तो यही स्थिति कमोबेश आज भी बनी हुई है।

पहली बार, शताब्दी के आठवें दशक के प्रारम्भ में भगतसिंह की भतीजी वीरेन्द्र सिन्धु द्वारा सम्पादित भगतसिंह के पत्रों और दस्तावेज़ों का एक संकलन प्रकाशित हुआ, जिसने मात्र तेईस वर्ष की उम्र में शहीद हो जाने वाले उस वीर युवा के अपार सम्भावनासम्पन्न विचारक-पक्ष की एक झलक प्रस्तुत की। इसी के आसपास वीरेन्द्र सिंधु द्वारा लिखी गयी भगतसिंह की एक महत्वपूर्ण जीवनी 'युगद्रष्टा भगतसिंह और उनके मृत्युंजय पुरखे' नाम से प्रकाशित हुई। आठवें दशक के पूर्वार्द्ध में ही दिल्ली के कुछ युवा क्रान्तिकारी वामपंथियों ने भगतसिंह के लेखों, बयानों, उद्धरणों का एक छोटा-सा संकलन निकालकर उनके द्वारा मार्क्सवाद को स्वीकार करने और उसका गहन अध्ययन करने का तथ्य रेखांकित किया। अब धीरे-धीरे मात्र "एक वीर क्रान्तिकारी" से अलग भगतसिंह की छवि एक मेधावी, युवा क्रान्तिकारी

विचारक के रूप में बनने लगी थी। जब इतिहासकार बिपन चन्द्र ने आठवें दशक के उत्तरार्द्ध में भगतसिंह का तब तक अनुपलब्ध निबन्ध 'मैं नास्तिक क्यों?' अपनी भूमिका के साथ प्रकाशित किया तो उनके गहन और अकुण्ठ भौतिकवादी चिन्तन के नये आयाम और नयी गहराई की पहली बार लोगों को जानकारी मिली। भगतसिंह का एक और लेख 'ड्रीमलैण्ड की भूमिका' पहले वीरेन्द्र सिन्धु सम्पादित दस्तावेज़ों के संकलन में प्रकाशित हो चुका था, लेकिन 'मैं नास्तिक क्यों?' के साथ यह निबन्ध दुबारा बिपनचन्द्र की परिचयात्मक टिप्पणी के साथ प्रकाशित हुआ, तो विशेषतौर पर इतिहास और साहित्य के अध्येताओं का ध्यान भगतसिंह की कुशाग्र आलोचनात्मक दृष्टि और उसमें अन्तर्निहित द्वन्द्वात्मकता की ओर आकृष्ट हुआ। इन दो लेखों ने स्पष्ट कर दिया कि अपने छोटे से जीवन के अन्तिम कुछ वर्षों के दौरान भगतसिंह की वैज्ञानिक समाजवाद के प्रति जो प्रतिबद्धता विकसित हुई थी, वह महज भावनात्मक या अनुभवसंगत नहीं थी, बल्कि उसके पीछे गहन-गम्भीर अध्ययन से उपजी, सतत् विकासमान वैचारिक समझ मौजूद थी। बिपन चन्द्र के अतिरिक्त सुमित सरकार, इरफान हबीब और हरबंस मुखिया आदि कई प्रतिष्ठित इतिहासकारों ने और क्रान्तिकारी वाम धारा से जुड़े कई बुद्धिजीवियों ने भगतसिंह के वैचारिक पक्ष को रेखांकित किया।

विगत शताब्दी के अन्तिम दो दशकों के दौरान भगतसिंह और उनकी पीढ़ी के भगवती चरण वोहरा, सुखदेव, विजय कुमार सिन्हा, बटुकेश्वर दत्त जैसे अन्य क्रान्तिकारियों की, क्रान्तिकारी आन्दोलन के वैचारिक विकास में भूमिका और उसके ऐतिहासिक महत्व को रेखांकित करने वाली महत्वपूर्ण शोध-कृतियों, जीवनियों और अब तक अनुपलब्ध दस्तावेज़ों का बड़े पैमाने पर प्रकाशन हुआ। 'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन' से जुड़े वरिष्ठ क्रान्तिकारी मन्मथ नाथ गुप्त (जो क्रान्तिकारी आन्दोलन के इतिहास पर पहले भी कई महत्वपूर्ण पुस्तकें लिख चुके थे) की पुस्तक 'भगतसिंह ऐण्ड हिज़ टाइम्स' नवें दशक के पूर्वार्द्ध में प्रकाशित हुई। फिर इस दिशा में सर्वाधिक महत्वपूर्ण काम हुआ, और वह था जगमोहन सिंह और चमनलाल द्वारा सम्पादित 'भगतसिंह और उसके साथियों के दस्तावेज़' का 1986 में प्रकाशन, जिसमें कुल 105 दस्तावेज़ शामिल थे। फिर 1986 में अंग्रेज़ी में और 1987 में हिन्दी में भगतसिंह के साथी क्रान्तिकारी शिव वर्मा के सम्पादन में भगतसिंह की चुनी हुई रचनाओं का एक और संकलन प्रकाशित हुआ जिसमें 28 दस्तावेज़ भगतसिंह के अपने नाम से तथा परिशिष्ट के रूप में अन्य साथियों के कुछ दस्तावेज़ और कुछ सरकारी दस्तावेज़ (कुल दस) शामिल थे। 1986 में प्रकाशित जगमोहन सिंह और चमनलाल द्वारा सम्पादित दस्तावेज़ों के संकलन में कुल 105 दस्तावेज़ शामिल थे जिनमें बहत्तर भगतसिंह का लेखन हैं और शेष तैंतीस भगवतीचरण वोहरा, सुखदेव, बटुकेश्वर दत्त, महावीर सिंह आदि साथियों का लेखन हैं। 'बम का दर्शन' शीर्षक दस्तावेज़ का पहला मसौदा भगतसिंह ने जेल से लिखकर बाहर भिजवाया था जिसे छपवाने से पहले अन्तिम रूप देने का काम भगवती चरण वोहरा ने किया था। उल्लेखनीय है कि यह दस्तावेज़ गांधी के लेख 'कल्ट ऑफ दि बम' के उत्तर में लिखा गया था।

'भगतसिंह और साथियों के दस्तावेज़' के प्रकाशन के अतिरिक्त, भगतसिंह की दुर्लभ जेल नोटबुक का प्रकाशन पिछली शताब्दी के अन्तिम दो दशकों के दौरान की एक महत्वपूर्ण घटना थी। इस बहुमूल्य और इतिहास के विद्वानों तक के लिए अज्ञात दस्तावेज़ का प्रकाशन सबसे पहले भूपेन्द्र हूजा ने 1991 में अपनी पत्रिका 'इण्डियन बुक क्रानिकल' में किस्तों में शुरू किया और फिर 1994 में इसका (अंग्रेज़ी में) पुस्तकाकार प्रकाशन हुआ। फिर अप्रैल, 1999 में इसका हिन्दी अनुवाद (अनुवादक विश्वनाथ मिश्र और सम्पादक सत्यम वर्मा) नयी भूमिका और नोटबुक की खोज-विषयक नये तथ्यों सहित लिखे गये दो लम्बे निबन्धों (आलोक रंजन और एल.वी. मित्रोखिन) के साथ तथा नयी सन्दर्भ-टिप्पणियों के साथ, परिकल्पना प्रकाशन, लखनऊ से (अब इस नोटबुक का नया हिन्दी संस्करण राहुल फाउण्डेशन से प्रकाशित हुआ है) प्रकाशित हुआ। इस नोटबुक के इस हिन्दी संस्करण को हम दोनों प्रस्तावनामूलक निबन्धों के साथ इस संकलन में भी शामिल कर रहे हैं। आलोक रंजन के लेख से पाठकों को भगतसिंह की जेल नोटबुक के प्रकाश में आने की पूरी कहानी का पता चल जायेगा। पहली बार इस जेल नोटबुक की चर्चा जी. देवल ने 1968 में 'पीपुल्स पाथ' नामक पत्रिका में प्रकाशित अपने लेख में की थी। इसे उन्होंने फरीदाबाद में रहे रहे भगतसिंह के छोटे भाई कुलबीर सिंह के पास देखा था और अध्ययन करके आवश्यक नोट्स लिये थे। पुनः 1977 में रूसी विद्वान एल. वी. मित्रोखिन भारत आये और कुलबीर सिंह के पास मौजूद नोटबुक के बारे में एक लेख लिखा जो उनकी पुस्तक 'लेनिन ऐण्ड इण्डिया' का एक अध्याय बना। सम्भवतः आठवें दशक के अन्त में कभी नोटबुक की एक फोटो प्रतिलिपि कुलबीर सिंह के परिवार ने दिल्ली में नेहरू मेमोरियल म्यूज़ियम लायब्रेरी (तीन मूर्ति) को प्रकाशित नहीं करने की शर्त के साथ दी। 1979 के बाद इतिहास के कई शोधार्थियों ने इसे वहाँ देखा था और अध्ययन किया था।

1986 में प्रकाशित 'भगतसिंह और उनके साथियों के दस्तावेज़' के दूसरे संस्करण (1991) की भूमिका में जगमोहन सिंह और चमनलाल ने भी इसका उल्लेख किया है। इसी जेल नोटबुक की एक और फोटो प्रतिलिपि डा. प्रकाश चतुर्वेदी मास्को अभिलेखागार से फोटो-प्रति कराकर लाये थे। नोटबुक की जिस प्रतिलिपि को पहली बार भूपेन्द्र हूजा ने 1991 में प्रकाशित किया,

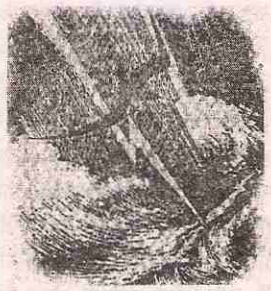

वह गुरुकुल कांगड़ी के तत्कालीन कुलपति जी.बी. कुमार हूजा को 1981 में संस्था के मुख्य अधिष्ठाता स्वामी शक्तिवेश से प्राप्त हुई थी। नोटबुक की अभी तक प्राप्त सभी प्रतिलिपियाँ एक-दूसरे से शब्दशः मेल खाती हैं, जिनसे इसकी आधिकारिकता की ही पुष्टि होती है। 'परिकल्पना प्रकाशन' से प्रकाशित भगतसिंह की जेल नोटबुक के हिन्दी अनुवाद का पहला संस्करण अब तक छह बार पुनर्मुद्रित हो चुका है, और बहुत कम करके आकलन करने के बावजूद कहा जा सकता है कि पचास हज़ार से अधिक हिन्दी पाठकों तक तो यह पुस्तक पहुँच ही चुकी है।

इस महत्वपूर्ण दस्तावेज़ के अतिरिक्त गत शताब्दी के अन्तिम दशक में भगतसिंह और उनके साथियों पर काफ़ी कुछ प्रकाशित हुआ जिसमें हँसराज रहबर और विष्णु प्रभाकर द्वारा लिखी गयी दो जीवनियाँ भी शामिल हैं। भगतसिंह और उनके साथियों के चुने हुए तेरह दस्तावेज़ों और उनके पत्रों-पर्चों के कुछ उद्धरणों का एक संकलन 1998 में परिकल्पना प्रकाशन से प्रकाशित हुआ, जिसके अब तक पाँच संस्करण आ चुके हैं। ऐसे प्रकाशनों का सिलसिला नयी शताब्दी में भी जारी रहा। हाल के वर्षों में दो ऐसी महत्वपूर्ण पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। पहली, कुलदीप नैयर की पुस्तक, 'Martyr Bhagat Singh : Experiments in Revolution, और दूसरी ए.जी. नूरानी की पुस्तक, 'The Trial of Bhagat Singh। सन्दर्भ-स्रोतों और व्याख्या की दृष्टि से कुलदीप नैयर की पुस्तक में तो कोई नयी बात नहीं है, लेकिन सरकारी दस्तावेज़ों की विस्तृत एवं गहन पड़ताल ए. जी. नूरानी की पुस्तक की विशिष्टता है। साथ ही, अपनी वस्तुपरकता के कारण भी यह पुस्तक विशेष रूप से महत्वपूर्ण है।

भगतसिंह और उनके साथियों की राजनीतिक गतिविधियों के अतिरिक्त उनके वैचारिक पक्ष के बारे में विगत पच्चीस वर्षों के दौरान इतना सब कुछ प्रकाशित होने के बावजूद, अब भी भगतसिंह पर हमारा इतना ज़ोर क्यों?—इतिहास के उन प्रतिष्ठित विद्वान महोदय के उसी प्रश्न पर हम वापस लौटते हैं, जहाँ से हमने अपनी बात की शुरुआत की थी। हमारी यह स्पष्ट और दृढ़ सोच है कि हिन्दी, अंग्रेज़ी, पंजाबी और अन्य सभी भारतीय भाषाओं को मिलाकर, तमाम पुस्तकों और लेखों के बावजूद, अभी भारत के तमाम शिक्षित नागरिकों में से कुछ लाख भी ऐसे लोग शायद मुश्किल से ही मिलेंगे, जो फाँसी के तख़्ते पर सहर्ष चढ़ने वाले वीर युवा क्रान्तिकारी की छवि से अलग, उस मेधावी युवा के युग-प्रवर्तक और प्रतिभाशाली चिन्तन से परिचित हों। हमारे देश में इतिहास के शोध ग्रंथ और शोध-पत्र विश्वविद्यालयों-शोध संस्थानों के पुस्तकालयों में बन्द रहने और उन विद्वानों के अध्ययन के लिए होते हैं, जिनका कोई सामाजिक सरोकार नहीं होता और जो सिर्फ़ अपने कैरियर और प्रतिष्ठा को समर्पित होते हैं। ऐसे विषयों पर आम पाठकों के लिए लिखी गयी पुस्तकों, जीवनियों, संस्मरणों और लेखों की भी पहुँच वास्तव में बहुत सीमित लोगों तक ही होती है। इसके कई कारण हैं। ज्यादातर प्रकाशकों का एकमात्र या सर्वोपरि लक्ष्य पुस्तकालय-आपूर्ति करके पैसे कमाना होता है। न तो उनके प्रकाशनों की क़ीमत पाठकों की जेब के अनुकूल होती है, न ही उनके पास आम जनों तक ऐसी सामग्री पहुँचाने लायक विक्रय-वितरण का नेटवर्क ही होता है। पूँजीवादी प्रकाशकों के अतिरिक्त पूँजीवादी पत्र-पत्रिकाओं का भी आज जो स्वरूप है, उसे देखते हुए यह सम्भव नहीं कि उनके माध्यम से भगतसिंह के विचारों की वास्तविक अन्तर्वस्तु जन समुदाय तक पहुँच सके। सच तो यह है कि पूँजी-केन्द्रित प्रकाशन-तंत्र या व्यक्तिगत उपक्रम के द्वारा यह सम्भव ही नहीं है। क्रान्तिकारी विचारों की ऐतिहासिक विरासत और नये-नये आयामों को व्यापक जनगण के अलग-अलग संस्तरों तक अलग-अलग रूपों में पहुँचाने का काम एक वैकल्पिक जन-मीडिया के द्वारा, एक ऐसे क्रान्तिकारी प्रकाशन तंत्र के द्वारा ही सम्भव है, जो लोभ-लाभ के उद्देश्य से या पूँजी और सत्ता प्रतिष्ठान की सहायता से नहीं, बल्कि क्रान्तिकारी परिवर्तन के लक्ष्य से निर्देशित और अकुण्ठ जन-सरोकारों से संचालित हो, जिनके पीछे जनता के क्रान्तिकारी आन्दोलन की शक्ति और समर्थन का आधार हो। राष्ट्रीय आन्दोलनकालीन पत्रकारिता और प्रकाशन के इतिहास का यदि अध्ययन करें तो यह बात स्पष्ट हो जाती है। अपने अनुभव की विनम्रतापूर्वक चर्चा करते हुए हम कहना चाहेंगे कि भगतसिंह, राहुल, गणेश शंकर विद्यार्थी आदि से लेकर क्रान्तिकारी साहित्य की वैश्विक विरासत तक का प्रकाशन अनेक बुर्जुआ प्रकाशकों ने किया है, लेकिन जन संसाधनों, कार्यकर्ता-आधारित प्रकाशन-वितरण तंत्र और सामाजिक-सांस्कृतिक-राजनीतिक कार्यों के समर्थन-आधार के आधार पर पुस्तकों-पुस्तिकाओं, पत्रिकाओं-पर्चों आदि के रूप में, राहुल फाउण्डेशन-परिकल्पना-जनचेतना के सम्मिलित तंत्र ने विगत दस वर्षों के दौरान आबादी के जितने बड़े हिस्से तक क्रान्तिकारी साहित्य की पहुँच और पैठ को सम्भव बनाया है, वह किसी बुर्जुआ प्रकाशक या मुट्ठी भर महत्वाकांक्षी बुद्धिजीवियों के किसी साझा उपक्रम के लिए न तो सम्भव है, न ही हो सकता है। और यह स्थिति तब है जबकि यह कोई आन्दोलनात्मक उभार का दौर नहीं है। जनता के आन्दोलन की लहरों पर सवार होकर यह धारा और तेज़ गति से आगे बढ़ती है, लेकिन ठहराव के कालखण्डों में, एकदम प्रतिकूल स्थितियों में, ऐसे वैचारिक-सांस्कृतिक उपक्रमों की आवश्यकता एक ज़रूरी तैयारी के रूप में होती है। इसी सोच के तहत अपने देश और पूरी दुनिया के क्रान्तिकारी साहित्य की ऐतिहासिक विरासत को प्रस्तुत करने के क्रम में भगतसिंह और उनके साथियों के महत्वपूर्ण दस्तावेज़ों को हमने बड़े पैमाने पर जागरूक नागरिकों और प्रगतिकामी युवाओं तक पहुँचाया है और इसी सोच के तहत, अब भगतसिंह और उनके साथियों के अब तक उपलब्ध सभी दस्तावेज़ों को पहली बार एक साथ प्रकाशित कर रहे हैं।

यह सन्तोष एक शुतुर्मुर्गी हरक़त होगी कि भगतसिंह और उनके साथियों के चिन्तन और उसके ऐतिहासिक महत्व से, अब इतने सारे प्रकाशनों के बाद, इस देश के लोग परिचित हो चुके हैं। अभी भी उच्च शिक्षा प्राप्त लोगों, बुद्धिजीवियों, साहित्यकारों और इतिहास के युवा विद्यार्थियों में कितने ऐसे लोग मिलेंगे, जो यह जानते हैं कि अपने जीवन के अन्तिम वर्षों, विशेषकर जेल जीवन के दौरान किये गये अध्ययन के बाद भगतसिंह समाजवाद के प्रति रूमानी प्रतिबद्धता से आगे बढ़कर एक प्रखर मार्क्सवादी

बन चुके थे? कितने ऐसे लोग हैं जो जानते हैं कि जेल से लिखे गये अपने अन्तिम दस्तावेज़ों में भगतसिंह ने क्रान्ति के लिए पेशेवर क्रान्तिकारियों पर आधारित एक कम्युनिस्ट पार्टी और उसके नेतृत्व वाली जन सेना तथा किसानों-मज़दूरों के जन संगठन बनाने की बात लिखी थी, कांग्रेसी नेतृत्व के बुर्जुआ चरित्र का कुशाग्र विश्लेषण किया था और कांग्रेस के नेतृत्व में आज़ादी मिलने की स्थिति में पैदा होने वाली परिस्थितियों का प्रतिभाशाली पूर्वानुमान प्रस्तुत किया था? बहुत कम लोग जानते हैं कि भगतसिंह अपनी विचारयात्रा के अन्तिम चरण तक एक कट्टर नास्तिक और अकुण्ठ द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी बन चुके थे। बहुत लोग जानते हैं कि उन्होंने जेल में मार्क्स, एंगेल्स, लेनिन आदि की प्रतिनिधि क्लासिकी कृतियों के अतिरिक्त जार्ज बर्नार्ड शा, गोर्की, अप्टन सिंक्लेयर, जैक लण्डन आदि की रचनाओं तथा फ्रांसीसी क्रान्ति से लेकर रूसी क्रान्ति तक के इतिहास का विशद अध्ययन किया था और इस अध्ययन से निर्मित इतिहास-दृष्टि के सहारे भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के बारे में आवश्यक एवं बहुमूल्य निष्कर्ष निकाले थे। बहुत कम लोग अभी भी इस तथ्य से परिचित हैं कि भगतसिंह का लक्ष्य साम्राज्यवाद और सामन्तवाद से मुक्ति मात्र ही नहीं था। राष्ट्रीय जनवाद के संघर्ष को वह समाजवादी क्रान्ति की दिशा में यात्रा का एक मुकाम मानते थे और अपने चिन्तन के अन्तिम चरण में राष्ट्रीय जनवाद के संघर्ष में भी वह मज़दूरों-किसानों की लामबन्दी तथा सर्वहारा वर्ग के विचारधारात्मक-राजनीतिक वर्चस्व को सर्वोपरि महत्व देने लगे थे। क्या यह निहायत ज़रूरी नहीं है कि इन सच्चाइयों से इस देश की व्यापक जनता को, विशेषकर उन करोड़ों जागरूक, विद्रोही, सम्भावनासम्पन्न युवाओं को परिचित कराया जाये, जिनके कन्धों पर भविष्य-निर्माण का कठिन ऐतिहासिक दायित्व है? यदि भगतसिंह और उनके साथियों के वैचारिक पक्ष से पढ़े-लिखे लोगों का बहुलांश भी परिचित होता तो यह कदापि सम्भव नहीं होता कि भाजपा और आर.एस.एस. के धार्मिक कट्टरपंथी फासिस्ट भी उन्हें अपने नायक के रूप में प्रस्तुत करने की कुटिल कोशिश करते!

जनता के इतिहास की इस गौरवशाली विरासत को जन-जन तक पहुँचाने का काम जन-मुक्ति संघर्ष के वैचारिक-सांस्कृतिक मोर्चे पर सन्नद्ध सेनानी ही कर सकते हैं। सरकारी इतिहासकारों और अकादमिक प्रतिष्ठानों से यह अपेक्षा की ही नहीं जा सकती। इस वर्ष भगतसिंह, सुखदेव, राजगुरु और चन्द्रशेखर आज़ाद की शहादत के पचहत्तर वर्ष पूरे हो रहे हैं। 2007-2008 भगतसिंह का जन्म शताब्दी वर्ष होगा। इन तीन वर्षों के दौरान देश के कुछ छात्र-युवा संगठनों, बुद्धिजीवियों और संस्कृतिकर्मियों ने देशभर में स्मृति-संकल्प यात्रा निकालकर भगतसिंह और उनके साथियों के विचारों और उनकी प्रासंगिकता से देश के जन-जन को परिचित कराने का, भगतसिंह की जनमुक्ति की अवधारणा को साकार करने का तथा उनकी स्मृति से प्रेरणा व विचारों से दिशा लेकर नयी समाजवादी क्रान्ति का सन्देश पूरे देश में फैलाने का संकल्प लिया है। राहुल फाउण्डेशन भी इस संकल्प का सहभागी है और इसीलिए हम भगतसिंह और उनके साथियों के सम्पूर्ण उपलब्ध दस्तावेज़ों का यह संकलन प्रस्तुत कर रहे हैं।

●

इस संकलन में वे सभी दस्तावेज़ शामिल हैं जो 1986 में जगमोहन सिंह और चमनलाल सम्पादित संकलन के पहले संस्करण में हैं। वे तीन दस्तावेज़ भी इसमें हैं जिन्हें सम्पादक द्वय ने 1991 में प्रकाशित संकलन के दूसरे संस्करण में शामिल किया था। इनके अतिरिक्त इसमें एक और पत्र शामिल किया गया है जो 'महारथी' पत्रिका (दिल्ली) के सम्पादक के नाम भगतसिंह ने लाहौर से 27 फरवरी 1928 को लिखा था। यह पत्र भगतसिंह के सबसे छोटे भाई कुलतार सिंह के सौजन्य से कुछ ही वर्षों पहले प्रकाश में आया है। इसे चमनलाल द्वारा सम्पादित और 2004 में प्रकाशित 'भगतसिंह के सम्पूर्ण दस्तावेज़' में शामिल किया गया है। चमनलाल द्वारा सम्पादित इस नये संकलन में जेल नोटबुक और डॉनब्रीन की आयरिश स्वतंत्रता संग्राम विषयक पुस्तक के भगतसिंह द्वारा किये गये अनुवाद के अतिरिक्त भगतसिंह के कुल 72 दस्तावेज़ों को शामिल किया गया है, लेकिन उनके साथियों के शेष सैंतीस दस्तावेज़ों को इनमें नहीं रखा गया है। हाँ, परिशिष्ट के रूप में में दो दस्तावेज़ अवश्य दिये गये हैं—पहला, नौजवान भारत सभा का घोषणापत्र और दूसरा एच.एस.आर.ए. का घोषणापत्र। अब इस संकलन में हम डॉन ब्रीन की पुस्तक के भगतसिंह द्वारा किये गये अनुवाद और उनकी जेल नोटबुक के (विश्वनाथ मिश्र द्वारा किये गये और सत्यम वर्मा द्वारा सम्पादित) हिन्दी अनुवाद के साथ ही, भगतसिंह और उनके साथियों के सभी 108 उपलब्ध दस्तावेज़ों को पहली बार एक साथ प्रकाशित कर रहे हैं। संकलन को एक सन्दर्भ-ग्रंथ के रूप में सापेक्षिक सम्पूर्णता प्रदान करने के लिए जेल नोटबुक के बारे में सम्पादक सत्यम वर्मा की भूमिका तथा आलोक रंजन और मित्रोखिन के उन लेखों को भी (क्रमशः प्रस्तावना और परिशिष्ट के रूप में) हमने इस संकलन में शामिल कर लिया है, जो जेल नोटबुक के हिन्दी अनुवाद के साथ 1999 में परिकल्पना से प्रकाशित हुए थे। इस भूमिका के अतिरिक्त इस संकलन की प्रस्तावना के रूप में भगतसिंह के साथी क्रान्तिकारी शिव वर्मा के सुप्रसिद्ध लेख 'क्रान्तिकारी आन्दोलन का वैचारिक विकास' हम यहाँ एक बार फिर प्रकाशित कर रहे हैं। यह कई बार, कई जगह प्रकाशित हो चुका है, लेकिन यहाँ फिर इसे देने का कारण इसके ऐतिहासिक मूल्यांकन की वस्तुपरकता के अतिरिक्त यह भी है कि इसे भगतसिंह के एक

नया वर्ष
विस्मृति के विरुद्ध संघर्ष के नाम,
कल्पनालोक की मुक्ति के नाम,
जीवन, संघर्ष और सृजन के नाम,
काल से होड़ करते
लोगों के नाम!

साथी ने लिखा है जो आजीवन कम्युनिस्ट आन्दोलन में सक्रिय रहा और जिसने पश्चदृष्टि से देखकर क्रान्तिकारी आन्दोलन का मूल्यांकन करते हुए अपने अनुभवों के अतिरिक्त अन्य आवश्यक ऐतिहासिक सन्दर्भ-स्रोतों की भी सहायता ली है। क्रान्तिकारी आन्दोलन का मूल्यांकन करने वाले लेखों में आज भी इसे सर्वाधिक वैज्ञानिक दृष्टि सम्पन्न माना जाता है। दूसरे स्थान पर, इसी विषय पर केन्द्रित प्रो. बिपन चन्द्र के एक शोध-निबन्ध '1920 के दशक में उत्तर भारत में क्रान्तिकारी आतंकवादियों की विचारधारा का विकास' को रखा जा सकता है।

पुस्तक के पहले खण्ड में भगतसिंह और उनके साथियों के सभी उपलब्ध पत्रों-दस्तावेज़ों के विषयानुसार, और कालक्रमानुसार दस उपखण्डों में बाँटकर प्रस्तुत किया गया है। इस खण्ड के अन्त के ग्यारह परिशिष्टों में हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन के वैचारिक विकास को सही पृष्ठभूमि में समझने के लिए उसके पूर्ववर्ती संगठन हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन के दो दस्तावेज़ और उसके शीर्ष नेताओं के कुछ पत्रों को भी शामिल कर लिया है। इनके अतिरिक्त इन परिशिष्टों में गदर पार्टी के क्रान्तिकारी नेता व सिद्धान्तकार लाला हरदयाल का लेख 'वर्ग रुचि का आन्दोलनों पर असर' भी शामिल कर लिया गया है जो सितम्बर 1928 में 'किरती' में 'एक निर्वासित, एम.ए.' के नाम से प्रकाशित हुआ था। इस लेख में सामाजिक आन्दोलनों के वर्ग विश्लेषण की जो पद्धति अपनायी गयी है, उसमें उस योजक सूत्र को ढूँढ़ा जा सकता है जो गदर पार्टी की परम्परा से एच. एस.आर.ए. को जोड़ता है और जिसके चलते गदर पार्टी की धारा के क्रान्तिकारियों का बहुलांश आगे चलकर भारत के कम्युनिस्ट आन्दोलन में शामिल हो गया। उल्लेखनीय है कि लाला हरदयाल के इस लेख पर भगतसिंह और उनके साथियों ने गहराई से विचार किया था। जब यह लेख 'किरती' में प्रकाशित हुआ था, उस समय भगतसिंह भी उसके सम्पादक मण्डल में शामिल थे।

अभी भी यह नहीं कहा जा सकता कि भगतसिंह और उनके साथियों का सम्पूर्ण कृतित्व प्रकाश में आ चुका है। घर से भागकर कानपुर आने और पत्रकार के रूप में 'प्रताप' में काम करने के समय से लेकर जेल जाने के समय तक 'प्रताप' (कानपुर), 'महारथी' (दिल्ली), 'चाँद' (इलाहाबाद), 'अर्जुन' (दिल्ली) और 'मतवाला' आदि कई हिन्दी पत्रिकाओं में भगतसिंह कई छद्म नामों से लिखा करते थे। 'किरती' में वह 'विद्रोही' उपनाम से पंजाबी में लिखते थे और कई सम्पादकीय भी मुख्यतः उन्होंने ही लिखे थे। उर्दू में भी वह अच्छा लिखते थे। इनमें से जो कुछ भी अब तक ढूँढ़ा जा सका है, उसके अतिरिक्त भी काफी कुछ बचे होने की सम्भावना है क्योंकि हिन्दी, उर्दू, पंजाबी पत्रिकाओं का इतिहास-लेखन के स्रोत के रूप में इस्तेमाल करने की दिशा में अभी भी न के बराबर काम हुआ है, राष्ट्रीय अभिलेखागार के प्रतिबन्धित साहित्य के प्रभाग और सरकारी दस्तावेज़ों को भी व्यवस्थित ढंग से खँगालने का काम अभी पूरा नहीं हो सका है। ब्रिटिश अभिलेखागार और इण्डिया ऑफिस लाइब्रेरी तथा पाकिस्तान के अभिलेखगार को भी अभी पूरी तरह से छाना नहीं गया है। भगतसिंह और उनके साथियों के लेखों-पत्रों की खोजबीन जब कुछ गम्भीरता से शुरू हुई, तब तक उस युग के अधिकांश सम्पादक, प्रकाशक और लेखक जीवित नहीं बचे थे।

'मैं नास्तिक क्यों' जैसे कई महत्वपूर्ण दस्तावेज़ों और जेल नोटबुक का जिस तरह आठवें-नवें दशक में पता चला, उसे देखते हुए, अभी भी कुछ सामग्री यहाँ-वहाँ पड़ी होगी, यह मानने के पर्याप्त कारण मौजूद हैं। इसीलिए इस संकलन को हमने 'सम्पूर्ण दस्तावेज़' के बजाय 'सम्पूर्ण उपलब्ध दस्तावेज़' नाम दिया है।

शिव वर्मा और भगतसिंह के कई साथियों तथा कई इतिहासकारों द्वारा उल्लिखित इस तथ्य की भी चर्चा यहाँ ज़रूरी है कि भगतसिंह ने जेल में सतत् गहन अध्ययन करने, मुकदमे की कार्रवाई में हिस्सा लेने तथा पत्रों, सन्देशों और विविध दस्तावेज़ों के लेखन के अतिरिक्त चार पुस्तकें और लिखी थीं : (1) 'आत्मकथा' (2) 'समाजवाद का आदर्श' (3) 'भारत में क्रान्तिकारी आन्दोलन' और (4) 'मृत्यु के द्वार पर'। इन पुस्तकों की पाण्डुलिपियों के ग़ायब होने की कई रहस्यमय कहानियाँ चलन में रही हैं और माना यही जाता है कि वे नष्ट हो चुकी हैं। लेकिन इस बात से अभी भी पूरी तरह से इनकार नहीं किया जा सकता कि जेल नोटबुक की तरह किसी के व्यक्तिगत संग्रह से या किसी अभिलेखागार से सहसा ये पाण्डुलिपियाँ भी बरामद हो जायें। 'भगतसिंह के सम्पूर्ण दस्तावेज़' (2004) के अपने सम्पादकीय निबन्ध में चमनलाल ने बिना किसी तथ्य के और निहायत लचर तर्क के आधार पर एक विचित्र अटकल प्रस्तुत की है। उनका कहना है कि हो सकता है कि इन चार पाण्डुलिपियों का कोई अस्तित्व ही न हो। वह अटकल लगाते हैं कि 'आत्मकथा' और 'मृत्यु के द्वार पर' शीर्षक पाण्डुलिपियाँ डॉन ब्रीन की आत्मकथा का ही प्रारूप हो सकती हैं। 'भारत में क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास' उनके अनुसार जेल में रहते हुए लिख पाना असम्भवप्राय था। साथ ही, वह यह भी कहते हैं कि तार्किक स्तर पर जेल प्रवास के दो साल में चार पुस्तकों का लेखन असम्भव है। यह अटकल विचित्र ही नहीं, बचकानी ओर ग़ैरज़िम्मेदाराना भी है, जिसकी अपेक्षा कम से कम ऐतिहासिक दस्तावेज़ों का सम्पादन करने वाले किसी व्यक्ति से नहीं की जानी चाहिये। पहली बात तो यह कि भगतसिंह को जब 12 सितम्बर 1929 से लिखने के लिए नोटबुक और पढ़ने के लिए किताबों की सुविधा मिलने लगी थी, तो भला यह सम्भव क्यों नहीं है कि वे जेल में रहकर भारत के क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास लिख सकें? बल्कि सम्भावना तो इसी बात की ज्यादा है कि सशस्त्र क्रान्ति की मध्यवर्गीय सोच से आगे किसानों-मज़दूरों के जनसंगठन बनाने तथा साथ ही गुप्त क्रान्तिकारी पार्टी बनाने की मार्क्सवादी अवस्थिति तक पहुँचने के बाद समाहारमूलक दृष्टि से भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास लिखने का विचार भगतसिंह के मस्तिष्क में आया हो। जहाँ तक जेल-जीवन के दो वर्षों के जेल जीवन के दौरान चार पुस्तकों के लेखन को तार्किक दृष्टि से असम्भव मानने की बात है, तो यह तो और अधिक हास्यास्पद है। चमनलाल को साइबेरिया-प्रवास में गये लेखकों-क्रान्तिकारियों से लेकर पूरी दुनिया के इतिहास से दर्जनों ऐसे उदाहरण दिये जा सकते हैं, जब कि कई प्रतिभाशाली और लक्ष्य के प्रति एकाग्र व्यक्तियों ने चार नहीं बल्कि दर्जनों जिल्दों में समा पाने वाली गम्भीर और

वैविध्यपूर्ण सामग्री का लेखन किया। भगतसिंह जैसे प्रतिभाशाली युवा के लिए यह कदापि असभंव नहीं था। ख़ास तौर पर तब जबकि जेल जीवन के दौरान के अध्ययन और अनुभव-विश्लेषण एवं समाहार के द्वारा उनका दृष्टिकोण सुनिश्चित हो चुका था, मुक्ति के रास्ते के बारे में विचार सुनिश्चित शक्ल अख़्तियार करने लगे थे और वह जानते थे कि उनके पास समय बहुत कम है। भगतसिंह की जेल नोटबुक से उनके गहन अध्ययन का जो आभास मिलता है, उसे देखते हुए भी चार पुस्तकों का लेखन अस्वाभाविक नहीं बल्कि इसके विपरीत अत्यन्त स्वाभाविक लगता है। इस तरह की अटकलबाज़ी के बजाय बेहतर यही होगा कि हम उन तथ्यों पर भरोसा करें जो शिव वर्मा और कुछ अन्य साथियों ने इस सन्दर्भ में बयान किये हैं। इसी सोच के तहत हम यह नहीं मानते कि भगतसिंह और उनके साथियों के जो दस्तावेज़ अभी तक उपलब्ध हो सके हैं, उनके अतिरिक्त कुछ छूट नहीं गया होगा। हमारा इस बात पर पर्याप्त ज़ोर है कि आगे भी इस दिशा में खोज का काम सतत् जारी रहना चाहिये।

भगतसिंह और उनके साथियों के वैचारिक पक्ष को जन-जन तक पहुँचाने का संकल्प गलदश्रु भावुकता या क्रान्तिकारी परम्परा के प्रति श्रद्धालुता के नाते तो ख़ैर कतई नहीं जन्मा है, इसका उद्देश्य इतिहास की अज्ञात, अल्पज्ञात या विस्मृत परम्परा और वैचारिक विरासत को उद्घाटित करना मात्र भी नहीं है। भगतसिंह और उनके साथियों का चिन्तन सुदूर अतीत की चीज़ नहीं है। यह राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष के उस निकट अतीत की विरासत है, जिसके गर्भ से बाहर आकर आज के भारत का विकास हुआ है।

भगतसिंह ने अपने समय के राष्ट्रीय आन्दोलन पर जो आलोचनात्मक और समाहारमूलक टिप्पणियाँ की थीं, अपने देशकाल की ज़मीन पर खड़े होकर उन्होंने भविष्य की सम्भावनाओं के बारे में जो आकलन प्रस्तुत किये थे, कांग्रेसी नेतृत्व का उन्होंने जो वर्ग-विश्लेषण किया था, देश की मेहनतक़श जनता के सामने, छात्रों-युवाओं के सामने, और सहयोद्धा क्रान्तिकारियों के सामने क्रान्ति की तैयारी और मार्ग की उन्होंने जो नयी परियोजना प्रस्तुत की थी, उसका आज के संकटपूर्ण समय में बहुत अधिक महत्व है जब पूरा देश देशी-विदेशी पूँजी की निर्बंध लूट और निरंकुश वर्चस्व तले रौन्दा जा रहा है, जब श्रम और पूँजी के बीच ध्रुवीकरण ज्यादा से ज्यादा तीखा होता जा रहा है, जब साम्राज्यवाद के विरुद्ध निर्णायक संघर्ष (जिसकी भगतसिंह ने भविष्यवाणी की थी) विश्व स्तर पर ज्यादा से ज्यादा अवश्यम्भावी बनता प्रतीत हो रहा है, जब कांग्रेस ही नहीं सभी संसदीय पार्टियों और नकली वामपंथियों का चेहरा और पूरी सत्ता का चरित्र एकदम नंगा हो चुका है, जब भगतसिंह की आशंकाएँ एकदम सही साबित हो चुकी हैं और जब, भारत की मेहनतकश जनता व क्रान्तिकारी युवाओं को साम्राज्यवाद और देशी पूँजीवाद के विरुद्ध एक नयी क्रान्ति की तैयारी के जटिल कार्य में नये सिरे से सन्नद्ध हो जाने का समय आ चुका है।

भगतसिंह के समय के भारत से आज का भारत काफ़ी बदल चुका है। उत्पादन-प्रणाली से लेकर राजनीतिक व्यवस्था, सामाजिक सम्बन्ध और संस्कृति तक के स्तर पर चीज़ें काफ़ी बदल चुकी हैं। साम्राज्यवादी शोषण-उत्पीड़न आज भी मौजूद है, लेकिन प्रत्यक्ष औपनिवेशिक शासन के दौर से आज इसका स्वरूप काफ़ी बदल चुका है। वर्ग संघर्ष, विगत सर्वहारा क्रान्तियों और राष्ट्रीय मुक्ति युद्धों के दबाव के चलते तथा अपने भीतर के आन्तरिक दबावों के फलस्वरूप साम्राज्यवाद के तौर-तरीकों में काफ़ी बदलाव आये हैं। राष्ट्रीय-औपनिवेशिक प्रश्न आज हल हो चुका है और राष्ट्रीय मुक्ति युद्धों में कहीं भागीदार और कहीं नेता की भूमिका निभाने वाला, भूतपूर्व औपनिवेशिक देशों का बुर्जुआ वर्ग आज पूरी तरह से पाला बदलकर साम्राज्यवादी शक्तियों का 'जूनियर पार्टनर' बन चुका है। गाँवों में भी बुर्जुआ भूमि सुधारों की क्रमिक प्रक्रिया ने भूमि सम्बन्धों को मूलतः बदल दिया है और नये पूँजीवादी भूमि-सम्बन्धों के अन्तर्गत, पूँजीवादी भूस्वामी बन चुके भूतपूर्व सामन्ती भूस्वामी तथा पूँजीवादी फार्मर बन चुके भूतपूर्व धनी काश्तकार आज गाँव के मेहनतक़शों और छोटे-मँझोले किसानों के शोषक की भूमिका में हैं। मँझोले किसानों की भूमिका उसी प्रकार दोहरी है जैसे शहरों में आज मध्यवर्ग की भूमिका दोहरी बन चुकी है—यानी इन वर्गों के ऊपरी संस्तर शासकों के साथ नाभिनालबद्ध हैं जबकि निचले संस्तर मेहनतकशों के क़रीबी बन रहे हैं। साथ ही गाँव के ग़रीबों को लूटने में देशी-विदेशी वित्तीय एवं औद्योगिक पूँजी की प्रत्यक्ष भूमिका बन रही है। निचोड़ के तौर पर कहा जा सकता है कि भारत जैसे अगली कतारों के भूतपूर्व औपनिवेशिक देश आज पिछड़े पूँजीवादी देश बन चुके हैं। अब इन देशों के इतिहास के एजेण्डे पर राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष नहीं बल्कि समाजवाद के लिए संघर्ष है।

लेकिन इन महत्वपूर्ण परिवर्तनों के बावजूद, साम्राज्यवाद के विरुद्ध युद्ध अभी जारी है। और जैसा कि फाँसी से तीन दिनों पहले पंजाब के गवर्नर को फाँसी के बजाय गोली से उड़ाये जाने की मांग करते हुए लिखे गये अपने पत्र में भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव ने लिखा था : "...यह युद्ध तब तक चलता रहेगा, जब तक कि शक्तिशाली व्यक्ति भारतीय जनता और श्रमिकों की आय के साधनों पर अपना एकाधिकार जमाये रखेंगे। चाहे ऐसे व्यक्ति अंग्रेज़ पूँजीपति, अंग्रेज़ शासक अथवा सर्वथा भारतीय ही हों। उन्होंने आपस में मिलकर एक लूट जारी कर रखी है। यदि शुद्ध भारतीय पूँजीपतियों के द्वारा ही निर्धनों का ख़ून चूसा जा रहा हो तब भी इस स्थिति में कोई फ़र्क नहीं पड़ता।" इस पत्र

(पेज 39 पर जारी)

नया वर्ष
विस्मृति के विरुद्ध
संघर्ष के नाम,
कल्पनालोक की,
मुक्ति के नाम,
आशाओं-संकल्पों के नाम!

ईश्वर का बहिष्कार

• राधामोहन गोकुलजी

राधामोहन गोकुलजी राष्ट्रीय जागरण काल की वह विभूति थे जिनमें यूरोपीय पुनर्जागरण काल के महामानवों वाली विचारों और कर्म की एकता थी। उनमें वाल्तेयर, दिदेरो, और रूसो जैसे फ्रांसीसी प्रबोधनकालीन दार्शनिकों की तार्किक प्रखरता थी और बेलिंस्की, हर्ज़न, चेर्नीशेव्स्की और दोब्रोल्यूबोव जैसे 19वीं सदी के रूसी क्रान्तिकारी जनवादी चिन्तकों वाली जुझारू भौतिकवादी दृष्टि और साहसिकता थी। 19वीं सदी के अन्त में उन्होंने जाति प्रथा और रूढ़ियों का विरोध किया था। 20वीं सदी के उत्तरार्द्ध में उन्होंने स्त्रियों की मुक्ति और लैंगिक समानता के बारे में जितने उग्र और वैज्ञानिक विचार अभिव्यक्त किये थे, उनका आज भी अभाव मिलता है। 20वीं सदी के पूर्वार्द्ध में वे नास्तिकता और तार्किकता के उत्कट प्रचारक के रूप में जाने जाते थे। सोवियत क्रान्ति के समय तक वे मार्क्सवाद की ओर मुड़ चुके थे। वे भारत में समाजवाद के प्रचारकों की पहली पीढ़ी के सदस्य थे। इस तथ्य को कम ही लोग जानते हैं कि महाकवि निराला गोकुलजी को गुरुतुल्य मानते थे। प्रेमचन्द ने उन्हें आधुनिक युग के चार्वाक की संज्ञा दी थी। 20वीं सदी के प्रारम्भिक तीन दशकों का राष्ट्रीय के सभी साहित्यकार और पत्रकार उन्हें आदरणीय मानते थे। भगतसिंह, शिव वर्मा और एच.एस.आर.ए. के कई क्रान्तिकारियों को वैज्ञानिक समाजवाद की दिशा में मोड़ने में भी गोकुलजी का योगदान था। इस महान व्यक्तित्व का ये लेख 'माधुरी' (सं. प्रेमचन्द) में सन 1925-26 में प्रकाशित हुआ था। —सम्पादक

प्रकृतिवादी और केवल काल्पनिक भावनाओं में बड़ा अन्तर है। एक तो गुलाब के फूल को प्रत्यक्ष देखता है-उसकी बनावट का ज्ञान और रूप-रंग आदि अनेक गुणों की जानकारी रखता है। यदि उससे गुलाब के सम्बन्ध में कोई प्रश्न करें, तो वह उसके अस्तित्व के प्रमाण में सीधी और वास्तविक दलीलों से काम लेगा और गुलाब के फूल का यथार्थ ज्ञान भी करा देगा। लेकिन दूसरा गुलाबी रंग के वर्णन करने को तैयार होता है और उस दशा में, जबकि उसने स्वयं गुलाब को कभी नहीं देखा तो सीधा कोई प्रमाण नहीं दे सकता। परोक्ष और अव्यावहारिक प्रमाणों से जो वह काम लेगा तो निस्सन्देह कदम-कदम पर ठोकर खायेगा। यह तो उस दशा में होता है, जबकि गुलाब कोई वस्तु है और गुलाबी रंगत, चाहे गुलाब से भिन्न द्रव्यहीन अवस्था में उसका देखना असम्भव हो, कोई ऐसी चीज है, जिसे हम आँखों से देख सकते हैं।

ईश्वर एक ऐसा कल्पित पदार्थ है, जिसे कभी किसी ने अपनी ज्ञानेन्द्रियों से प्रत्यक्ष नहीं किया इसलिए कि उसका सर्वथा अभाव है। ईश्वर कोई ऐसी चीज़ है ही नहीं। जिस पदार्थ का अत्यन्त अभाव है, उसका अस्तित्व कभी हो ही नहीं सकता। संसार में जितनी वस्तुएँ हैं, वे चाहे कितनी भी सूक्ष्म क्यों न हों, सबका प्रादुर्भाव प्रकृति से होता है; प्रकृतिजन्य सारे पदार्थ किसी न किसी दशा में इन्द्रिय ग्राह्य होते हैं। उदाहरण के लिए जल को लीजिए। यह भाप की सूरत में आँखों को दिखाई देता है। यदि यह और विश्लिष्ट होकर सूक्ष्मतम वायव्य (ळेंमवने) हो जाये अर्थात् गैस का रूप धारण कर ले, तो भी वह इन्द्रियों द्वारा जानने का विषय होगा। फिर देखिए बिजली बहुत ही सूक्ष्म रूप की एक वस्तु है; आँख, कान, नाक द्वारा इसे नहीं जान सकते। लेकिन बिजली की उत्पत्ति प्राकृत पदार्थों से होती है; और जब हम उसका व्यवहार किसी रूप में करते हैं तो द्रव्यों में उसे स्पष्ट देखते हैं कि काम कर रही है।

यह बात 'ईश्वर' नाम के पदार्थ में नहीं है क्योंकि उसको प्रकृति का निर्माता, संचालक और नाशकर्ता माना जाता है। प्रकट है कि जो वस्तु नहीं है—केवलमात्र एक काल्पनिक भाव है—उससे वास्तविक पदार्थ का बनना, बनाना या प्रकट हो जाना प्रत्यक्ष ही एक निर्मूल, अशुद्ध एवं मानव विज्ञान-विरुद्ध एक कल्पना मात्र है। यदि हम इसे बल, शक्ति किंवा गति मानें तो भी हम द्रव्य के सिवा अन्यत्र इसे कहीं भी नहीं देखते। इसी तरह गुलाबी रंग भी कभी किसी ने भिन्न, स्वतंत्र कहीं न देखा होगा, जैसा ऊपर कहा गया है। सारांश यह कि प्रकृति से अलग कभी कोई शक्ति या कोई और भाववाचक पदार्थ नहीं देखा गया । मन, ज्ञान, बुद्धि आदि सभी एक प्रकार के गुण या भाववाचक संज्ञाएँ हैं। इनका भी बोध हमें प्रकृति के ही द्वारा होता है। किसी खास दशा का निरीक्षण करके हम उसको एक नाम दे देते हैं; परन्तु वस्तुतः यह ऐसी कोई चीज नहीं है, जिसे हम प्रकृति से भिन्न मान लें।

ईश्वर के मानने वाले उसे सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, सर्वव्यापी, इत्यादि सभी गुणों से विभूषित करते हैं। यह लोग यह नहीं सोचते कि शक्तिमान् कहने से यह एक गुण 'शक्ति' का दूसरी चीज में आरोप करते हैं, तो दूसरी चीज कोई वस्तु होनी चाहिए और ईश्वर कोई वस्तु नहीं है। यही तर्क न्याय, दया आदि की बाबत भी किया जा सकता है। जीव को एक प्रकार से हम शरीर में देखते हैं, लेकिन बिना शरीर के कोई जीव ऐसा पदार्थ देखा नहीं जाता। सम्भव है कि रसायनशास्त्र के अनुसार जीव भी दो या अधिक चीजों के मेल से उत्पन्न कोई स्थिति विशेष हो। मनोवैज्ञानिक सिद्ध कई कुतूहलजनक घटनाओं के देखने पर जान पड़ता है कि शंकर स्वामी को यह खयाल हुआ था कि ईश्वर तो कोई चीज नहीं है। मगर जीव में कई विलक्षण शक्तियाँ हैं। इसलिए जीव और ईश्वर दोनों एक ही पदार्थ हैं। इस तरह पर शंकर स्वामी ने संसार को काल्पनिक ईश्वर के मानने से बहुत दूर तक हटाया—'अहंब्रह्मास्मि' 'तत्वमसि' 'सर्वखल्विदं ब्रह्म' का पाठ पढ़ाया। वेदान्त भी, जहाँ तक ईश्वर की मिथ्या कल्पना का सम्बन्ध है, एक खासा नास्तिकवाद है, जो संसार को बहुत ठीक मालूम होता जा रहा है। इनके विचार के लोगों की वृद्धि होती जाती है।

ईसाइयों ने खुदा की पवित्रात्मा को चिड़िया के रूप में

पानी पर तैरा कर, उसका मरियम के साथ सहवास कराकर अथवा तूर-पहाड़ पर जलती आग की शकल में मूसा को दिखला कर यही सिद्ध किया है कि बिना वस्तु के किसी शक्ति का स्थिर रहना असम्भव है। कुरान ने खुदा को एक बड़े मकान में बिठाकर तख्ती पर लिखने और फरिश्तों द्वारा सारा काम अंजाम देने का खयाल इसलिए पैदा किया कि बिना किसी व्यक्त पदार्थ के यह सारे गुण उसमें नहीं हो सकते, जिन्हें मुसलमान लोग खुदा में मानते हैं। 'कुन' का कहना बिना जिह्वा के असम्भव है, और जिह्वा से खुदा भी प्रकृतिजन्य एक पदार्थ बन जाता है।

सातवें आसमान पर मुहम्मद साहब का बुराक पर चढ़कर जाना, रिजवां का इन्हें बहिश्त दिखलाना, महात्मा मसीह का आसमान पर उठाया जाना तथा गरुड़ पुराण आदि की कही हुई स्वर्गों और नरकों की कल्पनाएँ, सभी इस बात की साक्षी हैं कि धर्म केवल कल्पना-मात्र हैं। इनसे सिवा लोगों को मिथ्या झगड़ों में फँसा पर बेकार बनाने के, कोई भी लाभदायक काम नहीं हो सकता। इसलिए मनुष्य जितनी जल्दी ईश्वर, खुदा या गॉड और धर्म, मजहब या रिलीजन को त्याग दें उतना ही अच्छा। मनुष्य जाति के कल्याण के लिए ही मैंने इन विचारों को प्रकट करने का साहस किया है। आशा है, विचारशील पुरुष इससे लाभ उठावेंगे।

लोग जो समय रोजे, नमाज, संध्या-पूजा और प्रार्थना में नष्ट करते हैं, उसे यदि समाज के किसी उपयोगी काम में लगावें, तो अपने भाइयों का अपना बहुत कल्याण कर सकते हैं। यदि संसार से ईश्वर और धर्म के व्यर्थ गपोड़े मिट जायें, तो लोगों में फैले हुए झगड़ों का अन्त हो जाये। जब कोई मूर्ख से मूर्ख पिता भी अपना वश चलते अपने पुत्रों को नहीं लड़ने देता तो, यदि वास्तव में कोई खुदा होता और सर्वशक्तिमान् खुदा होता—तो वह अपनी सन्तानों को कदाचित् अपने नाम पर कुत्तों की तरह न लड़ाता। यदि खुदा शक्ति और बुद्धि वाला होता तो भी वह एक ही धर्म सारे संसार के लिए बनाता—सारे संसार की एक ही बोली और एक ही संस्कृति होती—जिससे इन झगड़ों का बीज ही न पड़ता। जो खुदा झगड़ों का बीज बोता हो, जो धर्म मनुष्यों के लिए वास्तविक हितकर न हो, वह यदि वास्तव में कुछ हो भी तो विषवत् त्याज्य ही है।

फ्रांस का विद्वान वाल्टेयर कहता है If God did not exist, it would be necessary to invent Him for the people must have a religion.

अर्थात्—यदि ईश्वर न भी हो तो भी हमें एक ईश्वर का आविष्कार करना ज़रूरी है, क्योंकि जनता को धर्म की जरूरत है। हमें इस पण्डित की बात पर हँसी आती है। पहले तो उपर्युक्त वाक्य के पढ़ने से प्रकट होता है कि वाल्टेयर को स्वयं ईश्वर नामक किसी पदार्थ की सत्ता का पूर्ण विश्वास न था, इसलिए वह मूर्ख जनता को धोके में डालने की नीयत से एक ईश्वर की कल्पना करने के फेर में पड़ा। दूसरे उसने ईश्वर के लिए Him कर्मवाचक; एकवचन पुल्लिंग, प्रथम पुरुष का प्रयोग करके उसे मर्द करार दिया। इससे प्रकट है कि वह इस अजीब जानवर को मनुष्य मानता है और मनुष्य मानने से उसकी सर्वशक्तिमत्ता, सर्वव्यापकता आदि की सारी बातें धूल में मिल जाती हैं। यही बात हिन्दू मुसलमानों के खुदा की भी है। तीसरे जनता को एक धर्म दरकार है इसलिए एक खुदा का आविष्कार करना भी ज़रूरी है, यह भी बड़ी मज़ेदार बात है। जनता ने कभी खुदा नहीं माँगा; 'वाल्टेयर' और उसी की तरह सोचने वाले भद्रपुरुषों ने ख्वामख्वाह एक खुदा गढ़कर जनता को अगणित बेहूदगियों का शिकार बना डाला।

खुदा की ही कल्पना ने इंजील, कुरान, पुराण को रक्तरंजित इतिहास का भाण्डागार बनाया और घृणित कथाओं और भावों से मनुष्य जाति का सर्वनाश किया है। मैं तो महात्मा 'मिकाइल बेकुनिन' को सराहता हूँ, जो खुले शब्दों में मनुष्य जाति के हित के लिए वाल्टेयर को तुर्की-ब तुर्की जवाब देते हुए कहता है: If God really existed, it would be necessary to abolish Him.

अर्थात्—यदि खुदा सचमुच होता, तो भी उसे धक्का देकर निकाल देना ज़रूरी होता। सच है धर्म और ईश्वर ऐसी ही बुरी कल्पना है। इनसे संसार का जब तक पीछा न छूटेगा, तब तब उसका कल्याण न होगा।

जब तक योरोप में खुदा और धर्म सदृश रद्दी काल्पनिक बातों का जोर रहा, रोमन कैथोलिक और प्रोटिस्टेण्ट निरन्तर सर फोड़ते रहे। कैथोलिकों ने शक्ति प्राप्त होने पर प्रोटिस्टेण्टों को अग्नि के हवाले किया। और प्रोटिस्टेण्टों ने अधिकार पाने पर रोमन कैथोलिकों के प्राणों की आहुति देकर अपना कलेजा ठण्डा किया। भारत में शैव-शाक्त आदि ने धर्म के नाम पर खूब कुत्ते-बिल्लियों की सी लड़ाई की। पर जिस दिन योरोप ने धर्म और खुदा के ढकोसले को छोड़ा, उसी दिन से उसमें देश-प्रेम और ज्ञान-पिपासा जाग्रत हुई। आज योरोप प्रकृति की पूजा करके सर्वत्र अपने को पुजवा रहा है।

एशिया की बरबादी के कारण धर्म और खुदा ही हैं। आज बीसवीं सदी में भी इस मूर्खता के कारण एशिया की दशा अत्यन्त सोचनीय हो रही है। जिस जाति में जितनी धर्मान्धता है, वह उतनी ही अँधेरे गर्त में पड़ी हुई है। मुसलमानों में अधिक धर्मान्धता है, इसी से उनका संसार में पतन होता जा रहा है। भारत में भी मुसलमान विद्या, बुद्धि और धन आदि सभी बातों में अत्यन्त नीचे हैं। टर्की ने इस भेद को समझा, इसलिए उसने धर्म के हानिकर बन्धन को ढीला कर दिया। अब वह समय रहते इस रद्दी ख्याल को अर्द्धचन्द्र देकर सुखी होने का प्रयत्न करेगा, यह हमारा पूर्ण विश्वास है।

यदि ईश्वर और धर्म का ब्रह्मपाश कट जाये, यदि इस 'गौर्डियन नाट' के टुकड़े हो जायें, तो संसार के धर्म-ग्रन्थों के सारे निस्सार गपोड़ों का भी अन्त हो जाये। प्रत्यक्ष और विज्ञान-सिद्ध बातों के विरुद्ध विश्वास, आचार और व्यवहार का पाप मनुष्यों में से जाता रहे—स्वर्ग के झूठे मन मोहने वाले दास्तानों और बच्चों की सी बेसर-पैर की बातों से संसार का पीछा छूट जाये। ग़ालिब ने एक जगह बहिश्त का खासा मज़ाक उड़ाया है। वह कहता है—

'हमको मालूम है जन्नत की हकीकत ग़ालिब,
दिल को खुश रखने को ग़ालिब यह ख़्याल अच्छा है।'

किसी ने सच कहा है : Doctrine kills the life, and the living spontaneity of action. सिद्धान्तवाद जीवन को नष्ट कर डालता है और कार्य के स्वाभाविक अस्तित्व को मटियामेट कर

छोड़ता है। सार यह कि व्यक्ति हो या जाति कल्पनामात्र की तरंगों से ताड़ित होकर समुद्र में डाट लगी हुई खाली बोतल के समान इधर-उधर ठोकरें खाती फिरती है, फल कुछ नहीं होता। हाँ, संसार के कितने ही मनुष्य विज्ञान की ओर ध्यान न देकर इंजील, कुरान, वेद, पुराण के पढ़ने में न जाने कितना समय खराब कर देते हैं। अच्छा हो जो इन लोगों में सुबुद्धि का संचार हो।

(2)

Ideal is but a flower, whose root lies in the material condition of existence. : Proudhon.

सच है, आदर्श कल्पना एक पुष्प है, जिसकी जड़ जीवन की प्राकृत स्थिति में रहती है। यह नहीं कि बिना सर पैर की एक अनहोनी कल्पना हो। भला प्रत्यक्ष जगत् सत्य है, या केवल मात्र कल्पना में रहने वाला निराधार ईश्वर? कोई भी व्यक्ति, जिसका मस्तिष्क विकृत न हो प्रकृति को ही सत्य कहेगा। प्रकृति को असत्य और काल्पनिक ईश्वर को सत्य कहने वाला निःसन्देह पागल है। आँखों का अविश्वास करके कानों का विश्वास करना बुद्धिमानों का काम नहीं है। मनुष्य जाति का सारा इतिहास—चाहे किसी भी विषय का क्यों न हो-द्रव्य से ही सम्बन्ध रखने वाला मिलता है; सबका प्रकृति से ही सम्बन्ध है। गपोड़ कथाओं की बात दूसरी है। प्राणों के उद्गम और विकास का आधार तथा जीवत्व के सर्वश्रेष्ठ प्रकट प्रकाश का मूल प्रकृति है।

वस्तु के विकास में, प्राणियों की उन्नति में, हम देखते हैं कि पिछला रूप मिट जाता है और अभिनव विकसित उन्नत रूप उसका स्थानापन्न हो जाता है। मनुष्यता में (सज्ञान पशुपन में) केवल पशुता के बल का दिन-दिन ह्रास होता जाता है और ज्ञान का विकास, यह क्रिया नैसर्गिक है। इसी ज्ञान-वृद्धि के कारण प्रकृति के गुप्त रहस्य मनुष्य को मालूम होते जाते हैं। इस विकास-काल में, विज्ञान के प्रचण्ड मार्तण्ड के प्रकाश में सिवा विक्षिप्तों के और कौन ऐसा हो सकता है, जो अन्धकार के समय के कल्पित ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करेगा? किसी फारसी कवि ने क्या ही खूब कहा है :

ख़याले हरदो आलमरा ज़ लौहे दिल चुनां शुस्तम।
कि शुदबर तख़्तये हस्ती ज़ इक नुकता दोख़त पैदा।।

जन्म के पूर्व और मृत्यु के बाद के संसार को दिल से ऐसा हटाया कि वर्तमान काल में प्राकृत जीवन के आधार पर एक प्रत्यक्ष विचार के कारण एक बिन्दु से दो रेखाएँ उत्पन्न हो गईं। आदमहौवा के जंगलीपन का जमाना गया; खुदा की शरारत और शैतान की मेहरबानी की अब जरूरत नहीं। यह बीसवीं सदी का विज्ञान-काल है।

अब हममें सत्यासत्य के विवेक की बुद्धि बढ़ गई है और मिथ्या बातों को मार भगाने की इच्छा तथा शक्ति उत्पन्न हो गई है। आजकल का पण्डित कहता है : 'गुस्ताख़िये फ़रिश्ता नहीं मुआफ़ हमारे जनाब में।' आज हमें अवतारों, खुदा और रसूलों की जरूरत नहीं रही और न हम शून्य से संसार की उत्पत्ति मानने की मूर्खता करने को तैयार हैं। स्वार्थवश मनुष्यों को गुलामी के गर्त में रखने वाले असुरों की सारी कैफियत हमें मालूम हो चुकी है। हम सुरों के राजा ईश्वर की उस्तादियों और करामातों को खूब जान चुके हैं। हम समझ चुके कि हमारा कल्याण अगर हो सकता है तो असुरों के द्वारा।

सुर बनने वाले धर्मयाचकों, राजवर्गियों और धनवानों का विचार मेरे दिल में आ गया, इसलिए आवेश में आकर मैंने विषय से कुछ असंगत बातें कह डालीं। लेकिन यह जरूर है कि यदि सुर आजकल के उच्च, सर्वश्रेष्ठ बनने वाले हिन्दुओं की तरह होते हैं, और असुर ग़रीब, मेहनत की कमाई खाने वाले, छोटे कहलाने वाले किसान, मेहतर, धोबी, चमार, लोहार, बढ़ई हैं, तो मैं असुरों को अवश्य ही सुरों की अपेक्षा बड़प्पन दूँगा। ईश्वर यदि ऐसा ही है जैसा बाइबिल और कुरान का ईश्वर तो इन्हीं पुस्तकों के शैतान की उपासना को मैं लाख बार अच्छी समझूँगा।

हम देखते हैं, संसार का विकास क्रमशः नीचे से ऊपर को हुआ है। मानव जगत् दिन पर दिन ज्ञान की वृद्धि करता जा रहा है। जो विज्ञान, जो कला-कौशल 15वीं शताब्दी तक न थे, आज क्रमशः उन्नत होकर बीसवीं शताब्दी में हमारी आँखों के सामने हाजिर हैं। लेकिन ईश्वरवादी अपनी आँखें बन्द करके उलटा मार्ग लेते हैं। यह सर्वगुण-ज्ञान गरिमा सम्पन्न एक ईश्वर को तो पहले ही मान लेते हैं और फिर उससे अज्ञान-तिमिराच्छादित जगत् की उत्पत्ति मानते हैं। यह कैसी विचित्र बात है। ईश्वर भी कोई व्यक्ति होगा या होगी तो उसका उन गुणों से विभूषित होना जिनसे उन्हें विशिष्ट किया जाता है, सर्वथा सम्भव है। इस प्रत्यक्ष बात को जानने के लिए किसी चालबाजी की जरूरत नहीं। इसके लिए व्यक्त परमात्मा के मानने वालों को कुछ कहने की जरूरत नहीं।

कुछ लोग कहते हैं, ईश्वर एक सर्वव्यापक आत्मा है, जो आकाशवत् या सूर्य के प्रकाशवत् सर्वत्र व्याप्त है, वही संसार का निर्माता, संचालक और प्रबन्धक है। किन्तु यह बात भी नहीं बनती; क्योंकि जिस ईश्वर को ज्ञान का भण्डार, शील का खजाना, पाण्डित्य का सागर, दयालुता और न्याय की खत्ती और सारे गुणों का 'आर्टिजन वेल' (पातालतोड़ कूप) माना जाता है, उसकी कार्यवाही में तो यह सब बातें हम नहीं देखते। जिसे लोक-दिक्-काल के परे खोजने जाकर बड़े-बड़े दार्शनिकों ने जमीन और आसमान के कुलावे मिलाये हैं, उसकी सत्ता को गौतम, कणाद, कपिल, वाचस्पति मिश्र, शंकर आदि भारतीय और प्लेटो, डिकाटे, स्पायनोजा, काण्ट और हीगल आदि योरोपीय दर्शनकार भी न तो सिद्ध कर पाये, और न उसकी सन्तोषजनक व्याख्या ही कर सके। अन्त में बड़े-बड़े ऋषियों, अवतारों, नबियों, वलियों ने भी विश्वस्त खोज न की। जिस पहेली के बूझने में अपनी बलहीनता, बुद्धि-विहीनता को ही स्वीकार करके वेद शास्त्र केवल 'नेति-नेति' कहकर रह गये, उसे कोई कैसे मान सकता है। सच तो यह है कि असत् को सत् सिद्ध करना सम्भव नहीं। आँखें बन्द करके बेहूदा बातों पर विश्वास कर लेना दूसरी बात है। परन्तु प्राकृत नियमों के विरुद्ध कोई हस्ती नहीं हो सकती, न इसके विरुद्ध कोई शक्ति। इससे भिन्न कोई वैज्ञानिक केवल कल्पना ही कर सकता है। वनस्पति से प्राणी, प्राणी से मनुष्य, इसी प्रकार उत्तरोत्तर एक प्राकृतिक नियम के अनुसार संसार का विकास हुआ। तब यह अनहोना ईश्वर कहाँ से कूद पड़ेगा, जो प्रकृति से भिन्न और आरम्भ में ही सब गुणों की खान भी। आँखें बन्द

करके किसी बात की कल्पना कर लेना दूसरी बात है। विश्वास में यही तो एक दोष है कि इसकी आँखें नहीं होतीं। यह चिड़िया के दूध की कल्पना करता है और उसका अस्तित्व मानकर बैठ जाता है। इसी अन्धविश्वास से उत्पन्न हुआ ईश्वर समस्त संसार के धर्मग्रन्थों, दर्शनों और चालबाजों की पुस्तकों का प्रधान चरित्र नायक है, जिससे संसार की सारी बुराइयाँ, बदमाशियाँ, अत्याचार तथा कमजोरियाँ पैदा हुईं और मनुष्य जाति नीच और निकम्मी हो गई।

जहाँ शारीरिक हानि पहुँचाने के लिए अनेक नशेबाजी और दुराचार के अड्डे होते हैं, वहाँ मनुष्य को मानसिक हानि पहुँचाने और निकम्मा बनाने के लिए धार्मिक अड्डे-गिरजे, मन्दिर और मस्जिदें भी हैं। यह सब काम काबू याफ्ता शासन और शासक मण्डल के हित के लिए उनके दलालों अर्थात् पुरोहितों द्वारा, सरकार की छत्रछाया में बसने वाले गरीबों को लूटने वाले अमीरों की मदद से हुआ करते हैं। मूर्ख ग्रामीणों के दिमाग में जहाँ एक बार कोई बेवकूफी घर कर गई, फिर मुश्किल से निकलती है। इन बेचारों में ज्ञान नहीं, विवेक नहीं, समझ नहीं, विद्या नहीं, खाने को अन्न और पहनने को वस्त्र तक इनके पास नहीं। जो चाहे इन्हें पण्डित, मौलवी, पादरी बनकर ठग सकता है, धोखे में डाल सकता है और अपनी अर्थ-सिद्धि का साधन बना सकता है। पीढ़ियों से इन बेचारों का यही हाल है। सिखाने वाले धन्कि, पुरोहित और राजकर्मचारियों में से कोई भी ईश्वर को नहीं मानता, पर हरेक ईश्वर को मानने का ढोंग रचता है। मैं पूछता हूँ कौन पण्डित, मौलवी, पादरी, राजा-रईस और सेठ साहूकार ऐसा है जो झूठ नहीं बोलता, फरेब नहीं करता और तमाम दुनिया की बदमाशियों से पाक है, इस हालत में कोई चतुर मनुष्य यह कैसे मान सकता है कि लोग ईश्वर की हस्ती के कायल हैं, परमात्मा की सत्ता को स्वीकार करते हैं। इसलिए ईश्वर कोई चीज नहीं है, सिवा इसके कि गरीबों को ठगने के लिए ठगी का एक जाल है। यह जाल जितनी जल्दी तोड़ दिया जाये उतना ही अच्छा। जूसेप मटजीनी* और टामस पेन के सदृश मनुष्य-भक्तों ने भी इस कल्पना में पड़ कर ठोकरें खाईं तो दूसरों की क्या गिनती।

लेकिन दुःख तो इस बात का है कि इन देश और मनुष्य भक्तों ने भी कोई ऐसा तर्क और युक्ति-युक्त प्रमाण न दिया कि ईश्वर का अस्तित्व निर्विवाद रूप से सिद्ध हो जाता। प्रोफेसर फ्लिण्ट ने अपनी 'एन्टी थिइस्टिक थियरीज' नाम की पुस्तक में नए पुराने सभी अनीश्वरवादियों के तर्कों का उत्तर देने का बहाना किया है, लेकिन ईश्वर का अस्तित्व सिद्ध नहीं कर सके। मुझे दुःख है कि न तो इस छोटे से लेख में 'पेन' और 'फ्लिण्ट' के लेखों को उद्धृत करके उत्तर देने को स्थान और समय है और न इस समय मेरे पास पुस्तकें प्रस्तुत हैं। जिन महानुभावों को देखना हो 'पेन' कृत 'एज आव रीज़न' और फ्लिण्ट कृत 'थिइज़्म' और 'एण्टी थिइस्टिक थियरीज' को पढ़कर देख लें। इनमें अगर ईश्वर के अस्तित्व का कोई प्रमाण मिले तो कृपया मुझे सूचना दें। इतना खयाल रखें कि जिन बातों का मैं अपने अनेक लेखों में खण्डन कर चुका हूँ, उन्हीं का पिष्टपेषण न हो। मैं हर दशा में अपने विपक्षियों के तर्कों का उत्तर देने को तैयार हूँ, अलबत्ता गालियों के उत्तर देने में मैं असमर्थ हूँ। जो ईश्वर की सत्ता सिद्ध करने के बदले मेरे छिद्रान्वेषण करने में अपनी जीत समझते हैं, उनसे मैं पहले ही अपनी हार स्वीकार करता हूँ।

टामस पेन ने ज्योतिषशास्त्र का बड़ी निपुणता के साथ वर्णन करने के पश्चात् यह कह दिया कि यह सब ईश्वरीय चातुर्य का ही फल है, कोई तर्क नहीं है। जो भद्र पुरुष ईश्वरीय पुस्तकों का अपौरुषेय ग्रन्थ होना अस्वीकार करता हो और उनके खण्डन में तर्क और इतिहास से काम लेता हो वही एक कल्पना मात्र के आधार पर अपनी प्रतिज्ञा की सिद्धि मान ले, यह कितने बड़े आश्चर्य की बात है। इसी तरह महात्मा मटजीनी ने भी, अपने समय के एक अद्वितीय दार्शनिक होते हुए, ईश्वर को सिद्ध करने में जो तर्क सामने रखा है, वह बहुत हास्यास्पद है। आप कहते हैं : सार्वभौम और आदिम विचार, जिनका ग्रहण करना सदा शाश्वत समझा जाता है, सारे संसार के भाव और विश्वास मिथ्या एवं भ्रममूलक नहीं हो सकते। यह तर्क अनेक प्राच्य और पाश्चात्य विद्वानों ने मेरे सामने पेश किया, लेकिन जो इसी का नाम तर्क और लॉजिक है तो मैं कहूँगा कि संसार में तर्कशास्त्र का होना ही व्यर्थ है।

'बेकुनिन' (रूसी विद्वान्—प्राउढन" का समकालीन) ने ठीक कहा है कि जो तर्क की यही दशा है कि जो बात भूत और वर्तमान के सब लोगों ने ठीक मान ली है और मानते हैं, उसे तुम भी मान लो और कह दो कि खुदा है और जो तुम नहीं मानते—'किम्, कस्मात् कारणात्' से काम लेते हो—ईश्वर के अस्तित्व में सन्देह करते हो-तो तुम्हारा तर्क गया भाड़ में, तुम प्रत्यक्ष राक्षस हो। तब तो हमें भी मूर्खों की तरह बुद्धि को विदाई देकर ठकुरसुहाती करनी पड़ेगी। लेकिन कोई जवाँ मर्द अपनी बुद्धि के विरुद्ध किसी के भय से भद्दी बात को ठीक नहीं मान सकता। हाँ, हम यह जरूर मान लेंगे कि जो बातें अनन्त काल से सबने मान रखी हैं उनमें अनेक तर्क और विज्ञान-विरुद्ध कल्पनाएँ हैं। ऐसी कल्पनाओं की जाँच-पड़ताल करना प्रत्येक नवयुवक का धर्म है। अन्धों के अनुगतों का कल्याण इस संसार में असम्भव है।

बहुत काल तक संसार पृथ्वी को चपटी मानता रहा तो क्या हम उसे आज भी चपटी ही मान लेंगे? इसी तरह की हजारों बातें हैं, जिन्हें संसार अनादि काल से एक तरह पर मानता चला

नया वर्ष
तूफानों का आवाहन करते
नौजवान दिलों के नाम
उनके नाम
जो भूले नहीं हैं सपने देखना,
जीवन का सौन्दर्य गढ़ते
शिल्पियों के नाम!

आता था, विज्ञान ने उन्हें झूठा सिद्ध कर दिया और सच्चाई सामने रख दी तब हमें सत्य को मानना ही पड़ा।

लोग पहले पानी को एक तत्त्व समझते थे पर आज यह मानने को तैयार नहीं, क्योंकि हम जान गये हैं कि आक्सीजन और हाइड्रोजन नाम के दो वायव्य पदार्थों के योग से जल बना है। यदि हम आज समझ गये कि खुदा नाम का कोई पदार्थ न तो है और न हो सकता है तो हमारा काम है कि हम इस शब्द को अपने कोषों में से निकाल डालें और धर्म की बेहूदगी से अपना पल्ला पाक करें। संसार में बेहूदगी, अन्याय, अत्याचार से ज्यादा पुरानी चीजें और कोई भी नहीं। पहले लोग स्त्रियों को उनके पिता से छीन कर ले जाते थे। इस रीति का प्रमाण आज भी ब्याहों में पाया जाता है, लेकिन क्या आज भी कोई इस बात को पसन्द करेगा? फिर ईश्वर को फिजूल पकड़कर बैठना कहाँ की बुद्धिमत्ता है।

'बहुतेरे लोग कहते हैं प्रकृति और पुरूष भिन्न नहीं, एक ही हैं। जैसे द्रव्य में शक्ति, मेंहदी के पत्ते में सुर्खी। इसलिए ईश्वर है और सर्वव्यापी है।' हजरात, बिना गुलाब के गुलाबी रंगत कहाँ? जो यह कहें कि गुलाब भी है और गुलाबीपन भी, इसी तरह ईश्वर भी है और प्रकृति भी; प्रकृति में जो शक्ति है वही ईश्वर है तो मैं कहूँगा कि ईश्वर द्रव्यगत शक्ति का नाम है, वह कोई पृथक पूज्य पदार्थ नहीं, न वह न्यायशील और ज्ञान का इतना न्यारा गहरा गढ़ा है, जिसे हम नाप न सकें। ईश्वर यदि केवल गति, शक्ति, फोर्स का एक पर्याय मात्र है तो रहने दो। इसके लिए लम्बी-लम्बी नमाजों और बड़ी-बड़ी उपासनाओं की क्या जरूरत है? बड़े-बड़े पोथों के पाठ, मंत्रों के जप, तिलक-माला और गद्य-कथाओं से क्या लाभ? विज्ञान पढ़ो, द्रव्यगत ईश्वर की उपासना से नये-नये आविष्कारों में लग जाओ। बड़े-बड़े आविष्कर्त्ताओं को ही अवतार, नबी और वली समझो, उन्हीं की खोज की पुस्तकों को धर्म पुस्तक मानो, संसार को अकारण धोखा देने से क्या लाभ?

(3)

अब हम जरा अल्लाह मियाँ की पैदाइश की तरफ ध्यान देना चाहते हैं। क्योंकि अजन्मा, निर्विकार आदि नामों से लोग उसे पुकारा करते हैं? जब मेरा मूल मन्तव्य यही है कि ईश्वर को हमेशा के लिए जनता के हृदय-पटल से उड़ा दिया जाये तो जैसे कुश की जड़ खोदकर मट्ठा डाला जाता है, उसी तरह ईश्वर की भी जड़ खोदकर उसमें कैरोसिन तेल डालना पड़ेगा। इसलिए ईश्वर की जड़ तलाश करके उसका नाश करना मेरे लिये अत्यन्त आवश्यक काम हो गया। यदि हमने तर्क से लोगों के ऊपरी साधारण विचारों को पलट भी दिया तो क्या फिर लोग दूसरे नाम और रूप से एक नई कल्पना खड़ी न कर लेंगे? जैसे मूर्त्ति-पूजन छोड़ने पर भी मुसलमान संग असबद को बोसा देने लगे, मुहम्मद साहब की कब्र की जियारत और काबे की मस्जिद को सिजदा करने पर उतर पड़े, कुछ लोग ताजिये बनाने लगे, कितने हर किसी क़ब्र पर फूल-चद्दर चढ़ाना, फातेहा पढ़ना सीख गये, यही हाल हिन्दुओं, ईसाइओं और जैनों का भी है। इसलिए जड़ से ही खुदा परस्ती की कला कमा हो, तभी कुछ काम हो सकता है। अस्तु, हम ईश्वर की पैदाइश की खोज करके अपने ज्ञानवान्, विचारशील, धीर-वीर पाठकों को बतलातें हैं। हमारे परिश्रम से ईश्वर का नामनिशान ऐसा मिटे कि उसका कोई नाम लेने और पानी देने वाला बाकी न रहे, तो समझिये कि मेहनत सफल हुई। अगर जरा भी चिन्ह बाकी रहा, वट-वृक्ष की तरह फिर ईश्वर नये अंकुर फोड़ने लगा, तो संसार के सामने एक नई जहमत दिखाई देगी। आओ भाई अतिक्रान्ति से प्रेम करो—अपने बुद्धिदाता शैतान को सिंहासनारूढ़ करने के लिए अपने शत्रु खुदा को गद्दी से उतारो। इसी में हमारा-तुम्हारा, सबका कल्याण है। जब से ग्रेट ब्रिटेन ने खुदा को हटाकर शैतान को सिंहासनारूढ़ किया, तभी से उसका सारे संसार में बोलबाला है। अब बाकी योरोप में खुदा इधर-उधर छिपकर दिन काट रहा है, मगर अभागे एशिया देश में उसकी डकैती बराबर जारी है। इसलिए एशिया के प्रधान ज्ञान-क्षेत्र भारत से ईश्वर को सबसे पहले देशनिकाला देना हम भारतवासियों का प्रधान कर्त्तव्य है। अगर हम सब नौजवान कमर कस लें, तो महात्मा गाँधी सदृश दस-पाँच आदमियों की मदद से वह कभी स्थिर नहीं रह सकता है। आओ, इसकी जड़ का पता लगावें।

धर्म के भ्रम और ईश्वर की मिथ्या कल्पना के कुछ लोग वाल्टेयर की तरह समर्थक हैं, यह प्रजा में भय उत्पन्न करने की जरूरत बतलाते हैं। यदि जरूरत के कारण ही ईश्वर और धर्म को माना जाये तो वह चिड़ियों को डराने वाले खेत में खड़े काठ के पुतले के सिवा और कुछ नहीं रह जाता। जिस तरह प्राचीन एवं सार्वभौम कल्पना के आधार पर ईश्वर या धर्म का मानना विज्ञान और तर्क-शास्त्र के प्रतिकूल है, वैसा ही मूर्खों को डराने के लिए भी यह कल्पना बुरी और अमान्य है। जिनकी अन्तरात्माएँ दृढ़ हैं, जो सत्य के अनन्य भक्त हैं, जो मनुष्य के ज्ञान और उसके तर्क को प्रतिष्ठा देते हैं, वे इस प्रकार की कल्पना करने में सर्वथा असमर्थ रहे हैं, और रहेंगे।

मनुष्य जो धार्मिक विश्वास और ईश्वर की सत्ता को स्वीकार किये बैठा है, उसका कारण बेसमझी और अविचार इतना नहीं है, जितना दुःख और हार्दिक असन्तोष। गरीब, फिर बेपढ़े लोगों का जीवन इतना बुरा है, उनको खाने-पहिनने आदि की इतनी तकलीफ है कि जब वे कुड़कुड़ाते और जलते हैं तो सारा दोष किसी ऐसी शक्ति के मत्थे मड़ देते हैं, जो उनसे भिन्न है। यदि वे ईश्वर के बदले अपने कष्टों का दायित्व जबरदस्त, सताने वाले और अधिकार प्राप्त लोगों पर डालें तथा सामाजिक अतिक्रान्ति के लिए तैयार हों तो ज्यादा अच्छा हो; इनका दुःख दूर हो जाये। ईश्वर को मान लेने से दुःखों से छुटकारा मिलता नहीं दीखता। यदि मिलता तो पत्थर को रोटी मान लेने से भी काम चल जाता। सारांश यह कि ईश्वर का जन्म मूर्खता से हुआ और भय, छल तथा सन्तोष ने इसकी यथा अवसर पुष्टि की।

सृष्टि की प्रारम्भिक अवस्था में मनुष्य का ज्ञान इतना समृद्धिशाली नहीं था, जैसा अब है। उनकी योग्यता कम थी; उनके मनोवेग और ज्ञान यथार्थ काम न दे सकते थे जैसे बालक का हाल है। इसलिए उसने देवी, देव, नबी, रसूल, अवतार—जो भी किसी को सूझा, मान लिया। यह सब मनुष्य की ही कल्पना है, इसमें वास्तविकता कुछ नहीं है। इसका प्रमाण यह है कि

मनुष्य ने जो कल्पना की, अपने ही रूप के अनुरूप की। राजदरबार, जबरदस्तों की तलवार, धनवानों का सुखमय आगार देखकर हमने भी ईश्वर के दूत, जेल के बदले नरक, भोग-विलास के स्थान में स्वर्ग आदि की कल्पना कर ली। पुराण, बाइबिल, कुरान की गाथाओं को देखकर इस कल्पना की निःसारता सहज ही समझ में आ जाती है।

जिस तरह बच्चे अपनी मातामही, पितामही से झूठी लम्बी-चौड़ी कथाएँ सुनकर कल्पना किया करते हैं, मनुष्यों ने भी अपने स्वार्थी भाइयों से, जो कुछ अधिक चतुर थे, कथाएँ सुनीं और धर्म के नाम से, भोलेपन के कारण, सत्य मान बैठे। इस गप्प को लोग न मानते तो पोप, खलीफा, गोस्वामी पण्डित-पन्डे, पुजारी प्रभृति लोग जनता के धन से मोटे बनकर न बैठ सकते। एक बार कल्पित ईश्वर को गद्दी पर बिठाकर जैसे मन्दिर में मूर्त्ति स्थापित करके लोग संसार को ठगने लगते हैं, उसी तरह विद्वानों और बात बनाने वाले लोगों ने यह कह कर ठगना आरम्भ किया कि 'वह बड़ा दयालु, न्यायकारी, सारे जगत् का नियन्ता, विनाशक और बनाने वाला है', इत्यादि। इस तरह कल्पित ईश्वर की वेदी पर भोले-भाले लोगों का बलिदान प्रारम्भ हो गया, और हो रहा है।

ईश्वर को स्वामी और मनुष्य को दास मानने से ही संसार में गुलाम और स्वामी की सृष्टि हुई। इस विश्वास को लोगों ने अवतार और नबी आदि बनकर फैलाया, और पुजे। जबतक ईश्वर सबका स्वामी है, मनुष्य दास है। जहाँ ईश्वर का स्वामित्व मिटा कि मनुष्य की दासता का भी अन्त हुआ समझो। इसलिए ईश्वर को मिटाना, मनुष्य की दासता को हटाना तथा मनुष्यों में समता और न्याय का प्रचार करना है। ईश्वर को मानना बुद्धि और न्याय को एकदम जलांजलि देना है—मनुष्य की प्राकृत स्वतंत्रता का निश्चय नष्ट करना है। इसलिए यदि हम मनुष्य जाति का कल्याण चाहते हैं, तो सबसे पहले हमें धर्म और ईश्वर को गद्दी से उतारना चाहिए। आँखों से दिखलाई देने वाले और बुद्धि-ग्राह्य जगत् को मिथ्या मानकर एक निर्मूल पदार्थ को सर्वश्रेष्ठ मान बैठने से बड़ी और क्या नादानी हो सकती है?

धर्म ने मनुष्य को कितना नीचे गिराया, कितना कुकर्मी बनाया, इसको हम स्वयं सोचकर देखें। ईश्वर का मानना सबसे पहले बुद्धि को सलाम करना है। जैसे शराबी पहला प्याला पीने के समय बुद्धि की विदाई का सलाम करते हैं, वैसे ही खुदा को मानने वाले भी बुद्धि से विदा हो लेते हैं। ईश्वर की कल्पना मनुष्य को निर्बल, निकम्मा, परमुखापेक्षी और गुलाम बना डालता है। धर्म ही हत्या की जड़ है। कितने ही पशु धर्म के नाम पर रक्त के प्यासे ईश्वर के लिए संसार में काटे जाते हैं, इसका पता लगाकर पाठक स्वयं देख लें।

कितने झगड़े ईश्वर और धर्म के नाम पर होते हैं। आज हिन्दू मुसलमानों के बीच, भारत में जो परिस्थिति है, उसकी जिम्मेदारी धर्म ही पर है। आज कुरान को हटा दिया जाये, तो आज ही भारत में सुख शान्ति आ सकती है। हिन्दुओं में भी वही दोष है, जो मुसलमानों में; किन्तु बहुत कम दर्जे में। दोनों में राई और पर्वत का अन्तर है। फिर भी दोनों ही गलती पर हैं। जितने पादरी, मौलवी, पण्डित, पुजारी और पन्डे धर्म का दम भरते हैं, ऊपर से बड़े भद्र होते हैं; पर इनके दिल बहुत काले होते हैं। इनकी आकांक्षा रहती है कि ईश्वर और धर्म के नाम पर हम ठगें, लोग ठगें जायें, और हमारे पीछे पागल की तरह फिरें।

आज हमारे देश के बड़े-बड़े विद्वान यदि ब्रिटिश गवर्नमेण्ट को निकाल देने के पहले ईश्वर को निकाल देते, धर्म की फाँसी अपने गले से निकाल फेंकते, तो उनमें कभी का इतना बल आ जाता कि अपने देश का शासन आप करते। ज्यों-ज्यों दुनिया में बुद्धि का विकास होता जाता है, त्यों-त्यों ईश्वर की थोथी कल्पना मिटती जाती है। समय आवेगा कि धर्म की बेहूदगी से संसार छुटकारा पाकर सुखी होगा, और आपस की कलह मिट जायेगी। खुदा है क्या वस्तु? कोई वस्तु? कोई व्यक्ति? कोई मनोगत भाव? कुछ नहीं—एकमात्र निर्मूल कल्पना, एक कुविचार जनित शब्द। मनुष्य से अधिक सुन्दर, चतुर, शक्तिशाली, ज्ञानवान्, भद्र परोपकारी, न्याय और दया को समझने वाला, न तो कुछ है, न हो सकता है। लेकिन जब कुछ मनुष्य दूसरों को सताने वाले देखे जाते हैं, तो लोग एक सर्वश्रेष्ठ की कल्पना करते हैं। यह नहीं समझते कि मनुष्यों में भी भले और बुरे दोनों की पराकाष्ठा के नमूने हैं। इसी को देखकर ईश्वर में क्रोध, बदला, नाशकारी-शक्ति का आरोप किया गया है। मनुष्य का ही मनन करो, प्रकृति का पाठ पढ़ो, इसी में हमारा कल्याण है। एक अत्याचारी, एक मूर्ख शासक, खुद-मुख़्तार और रद्दी ईश्वर की कल्पना करना मानो स्वतंत्रता, न्याय और मानव धर्म को तिरस्कार करके दूर फेंक देना है। यदि आप चाहें कि ईश्वर आपका भला करें, तो उसका नाम एकदम भुला दें। फिर संसार मंगलमय हो जायेगा।

मनुष्य के सरल, साधारण नैसर्गिक ज्ञान के हथौड़े से ही ईश्वर की कल्पना को टुकड़े-टुकड़े कर सकते हैं, लेकिन देखा जाता है कि आध्यात्मिकता के नये-नये जाल, मनुष्य जाति के गले की फाँसी को सुदृढ़ करने के लिए गढ़े जा रहे हैं। साधारण जनसमूह का कल्याण और हमारी मानसिक भलाई इसी में है कि हम ईश्वर की ऐतिहासिक उत्पत्ति को मनोयोग के साथ समझें; वे कौन से लगातार ऐसे कारण हुए, जिनसे मनुष्य ने अपने मन में ईश्वर की कल्पना की, इसका विचार करें। यदि हमलोग पढ़े-लिखे, विचारशील व्यक्ति अच्छी तरह ध्यान देंगे तो निःसन्देह हम थोड़ा-बहुत उस सार्वभौम अन्तरात्मा की पुकार से, जिसका भेद हमने अच्छी तरह प्रकट नहीं किया, दब ही जाएंगे। कड़े से कड़े दिल के आदमी में एक स्वाभाविक निर्बलता देखी जाती है। वह यह कि सामाजिक बन्धन के दबाव में मनुष्य आ ही जाता है और किसी न किसी प्रकार उसे धार्मिक बेहूदगी के गढ़े में गिरना पड़ता है। टामस पेन सदृश विद्वान ने भी ऐसी ही ठोकर खाई है। धर्म की पकड़ साधारण जनसमूह या समुदाय में इतनी बलवती क्यों देखी जाती है? इसका यह अर्थ नहीं है कि यह सब पागल हैं। लेकिन इस अबूझ पहेली में फँसने का कारण उनकी

नया वर्ष
वर्तमान की अँधेरी कोख में
पलती उम्मीदों के नाम!

मानसिक चिन्ता और हार्दिक असन्तोष है। इस असन्तोष का निराकरण ईश्वर की कल्पना से नहीं हो सका तो अब सामाजिक अतिक्रान्ति ही इसका अन्त करेगी। इसलिए अतिक्रान्ति की बड़ी ही आवश्यकता है। जर्मनी में राजसत्तापोषक (Imperialist) ने एक बार कहा था—We do not only need the soldiers' legs but also their brains and their hearts.

अर्थात्—हमें सिपाहियों के केवल हाथ-पैरों की ही जरूरत नहीं है, हमें उनके दिल और दिमाग को भी गुलाम बना लेने की ज़रूरत है। मतलब यह कि ग़रीबों के दिल और दिमाग़—उनकी मानसिक वृत्ति और हृदय, ऐसे बनाये जायें कि वह खुशी से पशुओं की तरह धनिकों, अधिकार प्राप्तों की गुलामी यावज्जीवन करते रहें। यही तो मनु ने भी किया, जो उसने शूद्रों के कर्त्तव्य में यह लिखा कि 'एकमेव तु शूद्राणां प्रभु कर्म समादिशत्: एतेषां त्रय वर्णानां शुश्रुषामनुसूयया।' यह तो ग़रीबों को लूटने का एक साधन है कि उन्हें धर्म-याजकों द्वारा ईश्वर या धर्म का भय दिलाया जाता रहे। क्या कोई पण्डित, मौलवी, पादरी या दूसरा धर्म-याजक या राजा-रईस और धनिक ईश्वर को मानता है? उससे डरता है? कभी नहीं। क्योंकि वह जानते हैं कि ईश्वर मात्र हमारे स्वार्थ सिद्धि का एक खास बहाना है। स्कूल, देवालय, राजसत्ता और छापेखाने सभी कुछ गरीबों को अन्धकार में डालने के लिए धनवान और जबरदस्त लोगों ने मिलकर बनाये हैं। स्कूल भी शुद्धि बुद्धि से जनता के हित के लिए नहीं बनते। देवालय और ईश्वर तो प्रत्यक्ष ठगी के जाल ही हैं। एक स्थान पर पण्डित शिरोमणि बुहारिन ने स्पष्ट बतलाया है कि गरीबों के छलने के लिए धर्म (Church) के द्वारा क्या-क्या शरारतें की जाती हैं। हम यहाँ विषयान्तर होने के भय से इस पण्डित की विवेचना को स्थान नहीं दे सकते, अन्य पुस्तक में हम शीघ्र इस प्रकार के विषयों पर अलग विचार करने की इच्छा रखते हैं, यदि समय और शरीर साथ दें। ईश्वर का भ्रम मनुष्यों में कैसे उत्पन्न किया गया, इसी पर अब मैं थोड़ा सा और विचार करके इस लेख को समाप्त करना चाहता हूँ।

वेद, पुरान, कुरान, इंजील आदि सभी धर्म पुस्तकों को देखने से प्रकट है कि सारी गाथाएँ वैसी ही कहानियाँ हैं, जैसी कुपढ़ बूढ़ी, दादी, नानी अपने बच्चों को सुनाया करती हैं। गीदड़, चिड़िया और राक्षस की जो कहानियाँ मैंने अपनी दादी से सुनीं थीं, मुझे आजतक याद हैं। धर्म-ग्रन्थों की बातें कहीं-कहीं इससे बेहूदगी में बहुत आगे बढ़ जाती हैं। इसका कारण मानव बुद्धि का अपूर्ण विकास, बालकाल का मूढ़ विश्वास ही हो सकता है, न कि और कुछ। ईश्वर, देवता, नबी, वली वग़ैरह-वग़ैरह की बुद्धि-विरुद्ध कल्पनाएँ मूर्खों के ही सर में पैदा हो सकती हैं और उन्हीं के भाई-बन्द उनको सुनकर उन पर विश्वास कर सकते हैं। बिना देखे-सुने, बिना जाने-पहचाने अनहोने लापता ईश्वर या खुदा के नाम पर अपने देश को, जाति को, व्यक्तित्व को और धन-सम्पत्ति को नष्ट कर डालना एक ऐसी बड़ी मूर्खता है, जिसकी उपमा नहीं मिल सकती। हमारे देश में करोड़ों हरामखोर इसी बेहूदा कल्पना की बदौलत मज़े उड़ाते हैं और रात-दिन श्रम करने वालों को एक टुकड़ा रोटी भी यथासमय नहीं मिलती।

वह बुद्धि-विहीन मस्तक कैसा विचित्र होगा जिसमें 'कुछ नहीं' को सत्य, न्याय, सौन्दर्य, बल, धन, जन से सम्पन्न और मनुष्य को नीच, हेय, पतित, निर्बल, निकम्मा, पापी माना तथा मनवाया होगा। आओ आज हम इस बेहूदगी का पर्दा फाड़कर संसार को सुखी बनाने के लिए उसके गले से गुलामी का तौक उतारने के लिए, घोषणा करें कि 'ईश्वर नाम का कोई पदार्थ नहीं है—मनुष्य-बुद्धि की विडम्बना मात्र है।' जब तक यह कल्पित स्वामी ईश्वर हमारे सर पर रहेगा, हमारी गुलामी का अन्त न होगा। ईश्वर गया और गुलामी भी गई। ईश्वर ही सब पापों की जड़ है; सब फसादों का आदि है; इस नाम को भूल जाने में ही हमारा कल्याण है। प्रह्लाद के पिता के चातुर्य्य और प्रह्लाद की अदूरदर्शिता का पता, उन विचारशीलों को लगेगा, जो बात की तह में गहरे घुस कर देखेंगे। खुदा यदि हमारे कल्याण का हेतु हो सकता है तो सिर्फ़ इसी तरह कि वह हमारे बीच से सदा के लिए अपना सा मुँह लेकर चला जाये। सच तो यह है कि संसार खुदा से तंग आ चुका है।

हमें दुख है कि आज भी हमारे देश के बड़े-बड़े विद्वान यथा महात्मा गाँधी, साधु टी. एल. वासवानी, डाक्टर संजीवी, दार्शनिक-अग्रगण्य श्रीयुक्त भगवनदासजी इत्यादि-इत्यादि उसी भूल को पद-पद पर दृढ़ करने में लगे हुए हैं, जिसे, हमें चाहिए था, संसार के सामने प्रकट करके सर्वदा के लिए उठा देते, अशुद्ध अक्षर की भाँति हरताल से छिपा देते।

हमारे कुछ दोस्तों ने प्रकृति की आन्तरिक अविच्छिन्न शक्ति को (Inherent force in matter) ही ईश्वर मानकर प्रार्थना की है कि ईश्वर को इस काम से अलग पड़ा रहने दीजिए, लेकिन मैं कहता हूँ कि इस प्राकृत-शक्ति के लिए प्रकृति काफी है। अधिक विचार के लिए आप चाहें तो दूसरा नाम रख सकते हैं, लेकिन मैं अपने वश पड़ते 'राजा और ईश्वर' शब्दों से संसार के किसी भी कोष को कलंकित नहीं देखना चाहता। ईश्वर ही की कल्पना राजा की कल्पना, गुरुओं और महन्तों की कल्पना का प्रधान कारण है। इसलिए संसार की बुराइयों पर कुठाराघात करने के निमित्त ईश्वर की जड़ को काटना सबसे पहले जरूरी जान पड़ता है। आशा है हमारे नवयुवक इस बात पर गहरी, गंभीर और धीरता, वीरतापूर्ण दृष्टि डालकर शीघ्र ईश्वर को निकालने का प्रयत्न करेंगे।

(4)

संसार में जितने धर्म-ग्रन्थ हैं, सबमें श्रेष्ठ और सुपाठ्य प्रकृति है। इस ग्रन्थ के किसी-किसी सूत्र के व्याख्याकार भी हुए हैं। उन्हें भी हम चाहें तो सहायता लेने के विचार से पढ़ें। कितने ही गणितज्ञ, भूगोल-खगोल वेत्ता, नई-नई खोज और आविष्कारों के कर्ता पण्डित हुए हैं। इन्हीं के निश्चित सार्वभौम निर्दोष प्राकृतिक नियमों के मानने से हमारी स्वाधीनता, स्वतंत्रता तथा मनुष्यता स्थिर रह सकती है। इसके विरुद्ध जितने नियम हैं, वे सब तिरस्कार के साथ ठुकरा देने योग्य हैं। इन प्राकृत नियमों को जहाँ हमने एक बार समझ कर मान लिया, फिर हमारा मार्ग सीधा, सरल और निष्कण्टक हो जायेगा। संसार में साधारण जनता से लेकर बड़े-बड़े पण्डित तक सभी इसके विरुद्ध मुँह खोलने में असमर्थ हैं। कौन-सा ऐसा धर्म-याजक, जगद्गुरु,

महात्मा, पैगम्बर, अवतार, दर्शनकार इस संसार में है, जो गणितशास्त्र-सिद्ध सिद्धान्तों का विरोध करने का साहस करेगा। पागलखाने के बाहर मैं समझता हूँ, कोई बड़े से बड़ा धर्मान्ध भी ऐसा न मिलेगा, जो एक-एक दो होते हैं, इन बात से इनकार करे। आग जलती है, पानी जलती हुई आग को बुझा देता है, इसे कौन न मानेगा, जब तक कि कोई प्राकृतिक नियम इसके अन्दर दूसरी क्रिया न करता हो। साधारण जनता भी अपनी प्राकृतिक सहज बुद्धि से काम लेती है। वह नित्य प्रति निसर्ग के नियमों को देखती है और एक सीमा तक जानती तथा मानती है। यदि उसे बहके हुए पथ से हटाकर नैसर्गिक नियमों पर ही दृढ़ रखने का थोड़ा सा प्रयत्न किया जाये, तो निःसन्देह सत्य प्रकृति की उपासना अथवा असत्य ईश्वर के त्याग से बड़ा कल्याण हो। हमें उचित है कि हम विज्ञान की शरण लें और धर्म-ग्रन्थों को एक साथ नदी में बहाकर सदा के लिए निश्चिन्त हो बैठें। महात्मा कार्ल मार्क्स ने ठीक ही कहा कि 'त्मसपहपवद पे वचपनउ वि जीम चमवचसम'—अर्थात् धर्म मनुष्य जाति की अफीम है। एक बार जिसे अफीम का चस्का लग गया, वह फिर इस घातक विष के फन्दे से निकल नहीं सकता। यदि कोई हजार में एक आध निकल जाये तो बड़ा ही चतुर, दूरदर्शी, बहादुर या साधारण परिभाषा में अत्यन्त भाग्यशाली है। किसी-किसी धर्म रूपी अफीम का नशा तो इतना गहरा और बेहोश करने वाला होता है कि लोग अपनी जन्मभूमि, अपने बाप-दादों के रज-वीर्य और अपने अस्तित्व को भी भूल जाते हैं। उदाहरण के लिए हम मुसलमान धर्म को ही लेते हैं। भारत को गुलाम, भूखे मरते, अर्द्ध जाति वाले मुसलमान अर्थात् नवमुसलिम अपनी पिनक में आकर कहने लगते हैं कि इस्लाम धरती की किसी सीमा से आबद्ध नहीं हैं। 'मुस्लिम हैं हम, वतन है, सारा जहाँ हमारा।'

हम इन मुसलमानों से पूछते हैं कि आप हिजरत कर गए थे, तब आपको मुस्लिम दुनिया ने यथेष्ट प्यार क्यों न किया, रहने को स्थान क्यों न दिया? आपका वतन सारा जहान था तो आप क्यों मुँहकी खाकर लौट आये? 1920 ई. में सारे हिन्दुस्तान के मुसलमान क्यों न अपने धर्म शास्त्र के अनुसार हिजरत कर गये? बात यह है कि फकीर टुकड़े को तरसता है, जिसके रहने के लिए एक कोठरी भी नहीं, वही मूर्ख सारी पृथ्वी को अपनी जागीर बताता है—

'आवारा वतन कहते हैं सारा जहाँ हमारा।'

हमारे मुसलमान धर्मावलम्बी भाइयों से इस पिनक ने माता के रज और पिता के वीर्य से भी इनकार करा दिया। काश्मीरी ब्राह्मण, खत्री और अन्यान्य हिन्दू अपने बाप-दादों को भूलकर खुरासानी खच्चर की तरह अपने बाप-दादों के बदले अरब के रज-वीर्य का दावीदार बनने लगता है। वह इतना पागल हो जाता है, उसे यह भी तमीज नहीं रहती कि धर्म दूसरी चीज है और नस्ल दूसरी; धर्म का खयाली पुलाव और बात है और अपनी प्यारी मातृभूमि दूसरी। धर्म के नशे में चूर नशेबाज जिधर देखो यही पुकारता फिरता है कि—

बररूय शश जेहत दरे आइनः बाज है।
यां इम्तियाज नाकिसो कामिल नहीं रहा।।

इसी बदबख्त मजहब के नशे के पागल अपनी उस धरती की महत्ता और पवित्रता को भूल जाते हैं, जिसमें उनकी अगणित पीढ़ियों की मिट्टी मिली हुई है और चोरों, उठाईगीरों, डकैतों की धरती को पवित्र मान बैठते हैं। इस तरह जिस धर्म के कारण मनुष्य मनुष्यता से गिर जाता है, उस धर्म, मजहब या रिलीजन से कब किसी मनुष्य का कल्याण सम्भव है?

इस धर्म के नशे में डालकर ही पूँजीपति शासन श्रमिकों को लूटता-खसोटता और पशुतुल्य दास बनाये रखता है। समस्त देशों के धर्म-याजक धर्मरूपी अफीम के प्रचार के ठेकेदार हैं। इन्हें इस नशे से गरीबों को उन्मत्त रखने के लिए धन मिलता है। धर्म की व्यवस्था हमेशा धन से खरीदी जाती रही है और अब भी खरीदी जाती है। डायर और ओ-डायर की क्रूरताओं का पादरियों ने और मालाबार के मोपलाओं के राक्षसी कृत्यों का मौलानाओं ने समर्थन किया। यदि विचारपूर्वक देखा जाये तो सब पापों की जड़ धर्म है। इसलिए धर्म, मजहब और ईश्वर या अल्लाह को जितनी जल्दी भूमण्डल से विदा किया जाये उतना ही अच्छा।

याद रहे संसार में सामाजिक समुन्नति कभी किसी अप्राकृत शक्ति या शक्तियों से नहीं हुई, न हो सकती है और न कभी होगी। इसके सिवा विद्वानों ने यह सिद्ध कर दिया है कि ईश्वर, धर्म और अनैसर्गिक शक्तियों का भाव मानव जाति में उसकी एक अनुन्नत दशा में पैदा होता है। यह इतिहास-सिद्ध बात है, फिर विकास होने पर एक ऐसी उन्नत दशा आ जाती है कि यह भाव परिवर्तित होते-होते विनष्ट हो जाता है। जैसे लड़कियाँ जवान होने पर गुड़ियों का खेल छोड़ देती हैं और फिर पसन्द नहीं करतीं; छोटे-छोटे बच्चे जवान होने पर अपने बचपन के बहुतेरे विचारों और बेहूदा खेलों को छोड़ देते हैं, वैसे ही मनुष्य जाति भी एक विशेष विकसित अवस्था के प्राप्त होने पर धर्म और ईश्वर के निर्मूल झगड़ों को त्याग देती है। मनुष्य और प्रकृति के संघर्ष में किसी भी तीसरी बाह्य महाशक्ति का न अस्तित्व है, न 'कुछ नहीं' का कोई हस्तक्षेप हो सकता है। थोड़े से स्वार्थी लोग जनता को लूटकर अपना पेट और जेब भरने के लिए उसे धर्म के अँधेरे में डाल रखने का प्रयत्न किया करते हैं। इन असद्विचार वालों और लुटेरों से बचे रहना चतुर मनुष्यों का काम है।

हम कह चुके हैं कि केवल मूर्ख ही अनहोनी घटनाओं के घटने का विश्वास कर सकते हैं। जितने धर्म हैं सब गप्प कथाओं के आधार पर रचे गये हैं। यदि मिथ्यावादियों की होड़ा-होड़ी का आनन्द देखना हो तो हमें चाहिए हम धर्म पुस्तकों को पढ़ें और धर्म नामक छल से बचें।

सांसारिक कार्य करने के समय हम देखते हैं कि सभी नास्तिक होते हैं। क्या कोई मनुष्य रात दिन जो काम करता है उसमें प्रतिक्षण धर्म का विचार रखता है? रख ही नहीं सकता। यदि रखे तो संसार का कोई काम न चले। यही बड़ा भारी प्रमाण धर्म की अव्यावहारिकता और व्यर्थता को सिद्ध करने के लिए काफी है।

ला प्लेस नामक एक फ्रांसीसी विद्वान ने विश्वक्रम-ज्ञान (System of the universe) को प्रकट करने के लिए एक पुस्तक लिखी। यह पुस्तक प्रथम नेपोलियन बोनापार्ट ने पढ़ी और लेखक से कहा 'आपकी इस पुस्तक में कहीं भी ईश्वर का नाम नहीं मिला।' पण्डित ला प्लेस ने उत्तर दिया कि मुझे ऐसी कल्पना की

कहीं भी आवश्यकता नहीं मालूम हूई। उसने अपनी पुस्तक में न तो कहीं दर्शनों से काम लिया, न किसी विश्व के रचयिता की कल्पना से, साथ ही उसने गणित का भी प्रयोग नहीं किया था। लेकिन बाद में गणितज्ञों ने इसके विचारों को गणित की कसौटी पर रखा तो सत्य ही सिद्ध हुआ। आजकल विज्ञान के जितने भी महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ देखे जाते हैं, कहीं भी उनमें ईश्वर की जरूरत नहीं दिखाई देती। बिना ईश्वर के माने ही सारी की सारी समस्याओं की मीमांसा हो जाती है। मानवीय ज्ञान में कहीं भी ईश्वर को स्थान नहीं मिलता। हमने जो कुछ ऊपर लिखा है, उससे प्रकट है कि मनुष्यों को स्वातंत्र्य, साम्य और बन्धुत्व विनष्ट करने में धनपात्रों, पूँजीपतियों, जबरदस्तों, राजकर्मचारियों आदि काबूयाफ्ता लोगों का जितना हाथ है, उतना ही धर्म का भी है। धर्म अत्याचारियों को सहायता देता है, गरीबों तथा दुखियों को और भी अधिकतर गरीब और दुखी बनाता है। किसी समय योरोप में धर्म के नाम पर ऐसे अत्याचार हुए हैं कि उन्हें देखकर शैतान, जिसे धर्म के मानने वालों ने इतना बुरा चित्रित किया है, यदि सचमुच होता तो लज्जा से सर झुका लेता। योरोप का धर्म इतिहास (History of the church) इसका साक्षी है। 'इनक्वीजीशन' के कानून ने क्या कुछ अत्याचार नहीं किया? यह कानून पुरोहित-राज पोप की तृष्णा-पूर्ति के लिए धर्म-विरोधी की खोज करके उसे प्रताड़ित करने के लिए बनाया गया था। बेचारे 'मूर' जैसे सज्जनों की हत्या का दायित्व धर्म या ईश्वर के ही सर पर है। ग्लेंको के हत्याकाण्ड में भी पापिष्ट ईश्वर और धर्म का ही हाथ था। धर्मान्धता के नाश के साथ ही साथ पाश्चात्य देशों के अभ्युदय का इतिहास आरम्भ होता है और धर्म व ईश्वर के पतन से ही सोविएट सरकार के जन्म का सूत्रपात रूस में हुआ । इतनी ऐतिहासिक घटनाओं के होने पर भी जो धर्म के नशे के मतवाले हैं, उन्हें बुद्धिमान समझें या क्या? यह हमारी समझ में नहीं आता।

भारत में भी शैवों, शाक्तों, वैष्णवों की पारस्परिक कटाछनी का पता पुराणों से मिलता है। स्मार्तों, तांत्रिकों और श्रोत्रियों के बैर भाव का हाल हिन्दू मात्र अपने ग्रन्थों को पढ़कर जान सकते हैं। मुसलमानों की पारस्परिक धार्मिक दलबन्दियों और झगड़ों का हाल जानना हो तो 'असना अशारिया' नामक पुस्तक को पढ़कर देखिये। यह पुस्तक फारसी भाषा में भारत में भी मिल सकती है। सम्भवतः इसका उर्दू संस्करण भी मिलता होगा। इसमें बहत्तर फिरकों के भेदों का वर्णन है।

बौद्धों और वैदिक धर्मावलम्बीय ईश्वरवादियों में जो झगड़े हुए वह भी हमसे छिपे नहीं हैं। शंकर स्वामी के शिष्यों ने बौद्धों के साथ जो जबरदस्तियाँ कीं उन्हें हम चाहें तो अच्छी तरह पुस्तकों को पढ़कर जान सकते हैं। जैनियों में श्वेताम्बरी दिगम्बरी, तेरह पंथी, स्थानकवासी और आत्मारामी प्रभृति सम्प्रदायों की मोर्चेबन्दी, झगड़े-लड़ाई हमारी आँखों के सामने है। यदि धर्म की कल्पना न होती तो इन सारे झगड़ों का भूमण्डल पर नामोनिशान न होता, न इतिहास के पृष्ठ इन अमानुषिक कृत्यों से गन्दे होते। इन सबका दायित्व ईश्वर और धर्म को मानने वालों पर ही है।

संसार की उत्पत्ति को धनपात्र, राज्याधिकारी और पुरोहित-मण्डल खूब बेदर्दी के साथ उड़ावेंगे, क्योंकि ईश्वर ने उन्हें दिया है। बिचवनिए दलाल, सटोरिए, छोटे व्यापारी बचे हुए को भोगने के लिए बने हैं। राज कर्मचारी और सैनिक मनमानी सम्पत्ति का विध्वंस करेंगे। लेकिन जनसमूह को वही टुकड़ा और धक्का बदा है। इनके लिए इनके ईश्वर का आदेश ही यह है कि निर्धन तो संसार में बने ही रहेंगे, तुम खाओ-पीओ, मौजें मारो। क्या हम लोग ऐसे ईश्वर की परवा करते पड़े रहेंगे? अब संसार के भुक्कड़ों की श्रेणी, गरीबों का नाम, गरीबों का दृश्य मिटाना होगा और इस काम के लिए ईश्वर को अर्द्धचन्द्र देकर निकालना अनिवार्य है। हमें अब पक्षपाती, निर्दय, कल्पित ईश्वर की जरूरत नहीं रही।

अब वह समय नहीं रहा कि मुसलमानों के बालक कुरान रटने में अपने जीवन का पवित्र और उत्तम अंश बरबाद कर डालें या ईसाई बालक इंजील की आयतों, गीतों, या भजनों में जीवन गँवावें। न अब दूसरे ही धर्म वाले अपने धर्म के नाम पर अच्छे काम करने के स्थान पर आँख बन्द कर दकियानूसी रद्दी किताबों के मंत्र या आयत अगणित बार बड़बड़ावेंगे। संसार होश में आता जाता है और पुरोहिती तथा कल्पित बेहूदगियों का अन्त होने वाला है। अब महात्मा मसीह की यह अयौक्तिक शिक्षा कि 'जो तुम्हारे एक गाल पर थप्पड़ मारे उसे अपना दूसरा गाल भी फेर दो' संसार को धोखे में नहीं डाल सकती। हम देखते हैं कि गाय, भेड़, बकरी आदि सीधे प्राणियों को उनकी शान्तिप्रियता के कारण कोई नहीं छोड़ता। रोज बड़े-बड़े मौलवी पादरी और पण्डित उन्हें मार-मारकर हड़प करते चले जाते हैं। शेर और चीतों का न कहीं बलिदान होता है, न कुरबानी, न इनको कोई मारकर खाता है। इसलिए ऐसी उलटी शिक्षा देने वाले अब संसार में प्रतिष्ठा नहीं पा सकते।

म. मसीह कहते हैं—'Thou shalt not kill thy neighbour.' 'A christian has no right to exploit his brother.' 'Turn thy right cheek when smitten on the left.'

तू अपने पड़ोसी को मत मार (यहाँ पड़ोसी का अर्थ है हरेक मनुष्य)। पर क्या जर्मनी, फ्रांस, इटली और ग्रेट ब्रिटेन के ईसाई चुपचाप बाएँ गाल पर थप्पड़ खाकर दाहिना गाल दूसरे तमाचे की प्रतीक्षा में फेर देते हैं? आपस में थोड़े से आदमियों के लाभ के लिए लाखों के गले नहीं काटते-कटवाते? क्यों अपने पड़ोस के लोगों को लूटने की ही चिन्ता में ईसाईयों और मुसलमानों का समय बीतता है? फिर हम धर्म के झूठे ढकोसलों में फँसना कैसे पसन्द कर सकते हैं। लुटेरे लोग और डाकू जातियाँ धर्मउपदेश को सुन-सुनकर मन में मुसकराती और कहती हैं 'लो मौलवीजी, पादरी साहब, पण्डित महाराज हम आपको धन देते हैं, आप दुनिया को उपदेश करें जिसमें सब सोते हुए बेहोश पड़े रहें और हम सबको खूब लूटें।' इस दशा में क्या ईश्वर की कल्पना निर्धनों, कमजोरों और भोली-भाली सर्वसाधारण जनता के लूटने का एक खासा साधन नहीं है? है, इसलिए ईश्वर और धर्म को जितनी जल्दी संसार से नेस्तनाबूद कर दिया जाये उतना ही अच्छा।

मनुष्य का कल्याण इसी में है कि वह नैसर्गिक नियमों के अनुसार चले, क्योंकि उनको उसी ने प्रत्यक्ष किया है। उसके सर

(पेज 30 पर जारी)

पूँजीवादी स्वास्थ्य-सुविधाओं के काग़ज़ी ढोल की पोल

'हेल्थ इज़ वेल्थ', 'स्वास्थ्य ही जीवन है', आदि जैसी अनेक कहावतें व जुमले हम सभी ने सुने होंगे। पूँजीवादी प्रचार माध्यमों द्वारा वे प्राथमिक स्कूलों से लेकर सरकारी दफ़्तरों तक और अख़बार व टी. वी. चैनलों द्वारा बखूबी रटाये जाते हैं। लेकिन सच्चाई यह है कि आज के 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' जैसे बाज़ारू अख़बार इस बात पर तो आनन्दातिरेक की अवस्था में चले जाते हैं कि अरबपतियों के मामले में भारत आठवें स्थान पर है, मगर वे यह नहीं बताते कि बेरोज़गारी के मामले में, भ्रष्टाचार के मामले में, सरकारी दमन-उत्पीड़न के मामलों सहित जन सुविधाओं जैसे शिक्षा, चिकित्सा और रोज़गार की अनुपलब्धता के मामले में भारत कौन से स्थान पर है। चिकित्सा-व्यवस्था को ही ले लिया जाय तो पता चल जाएगा कि इस इक्कीसवीं सदी में पहुँचने, "भारत-उदय" होने और मुद्रास्फीति में "सुधार" होने जैसे जुमले देने के बावजूद यह व्यवस्था यह क्यों नहीं बताती कि चिकित्सा जैसी बुनियादी मानवीय ज़रूरतों तक को पूरा करने में यह क्यों असफल है। तरक्की का ढोल पीटने वाले व्यवस्था के वैचारिक तोपों के पास इस बात का उत्तर क्यों नहीं है कि हैज़ा, आंत्रशोथ, तीव्र अतिसार जैसी अनेक मामूली बीमारियों (जिनका इलाज वैज्ञानिकों ने दशकों पहले ही खोज निकाला था) तक से आज भी लाखों लोग प्रति वर्ष मर रहे हैं। सरकारी तंत्र इतना लचर हो चुका है कि आज मामूली से मामूली बीमारियों के इलाज के अभाव में लोग अपनी जानें गवाँ रहे हैं।

आज हालत यह है कि कई बीमारियों के मरीज़ों की संख्या के मामले में भारत अव्वल है! एक सर्वे रिपोर्ट के मुताबिक भारत में लगभग 1 करोड़ 70 लाख तपेदिक (टी.बी.) के मरीज़ हैं जो विश्व में सर्वाधिक हैं। इनमें से प्रति वर्ष पाँच लाख की तो मृत्यु हो जाती है। पूरी दुनिया के कुष्ठ रोगियों का 58 प्रतिशत (6. 67 लाख) तो केवल भारत में ही है। पूरी दुनिया के दृष्टिहीनों की बड़ी आबादी भारत में है जोकि 1 करोड़ 60 लाख है।

भारत में 5 वर्ष से नीचे के लगभग 10 करोड़ बच्चे कुपोषण का शिकार हैं। 6 वर्ष की आयु तक के हर तीन बच्चों में से दो तो कुपोषण का शिकार होते हैं जिनमें से एक तो जन्मजात कुपोषित होता है। भारत में पाँच वर्ष से कम उम्र के बच्चों की मृत्यु दर 87 फीसदी है जोकि विश्व में सबसे ज़्यादा है। यहाँ तक कि बांग्लादेश, नेपाल, भूटान जैसे पड़ोसी देशों की हालत भी हमसे बेहतर है, जहाँ मृत्यु दर क्रमशः 69 फीसदी, 82 फीसदी व 85 फीसदी है। प्रति वर्ष 16 लाख माताओं की प्रसव के दौरान मृत्यु हो जाती है। भारत में संक्रामक रोगों का प्रतिशत लगातार बढ़ता जा रहा है। डेंगू, प्लेग जैसी बीमारियाँ दोबारा बढ़ रही हैं। अकेले संक्रमित जल-जनित बीमारियों के मामले में प्रति वर्ष एक करोड़ से भी अधिक मरीज़ अस्पतालों में जा रहे हैं। यह तो सरकारी आँकड़ा है। वास्तविक संख्या तो इससे कहीं अधिक है। उपरोक्त सभी मामलों में भारत विश्व के नंबर एक पायदान पर है, जिसे इस व्यवस्था के चाटुकार, भण्डुए पत्रकार जनता के समक्ष प्रस्तुत नहीं करते। बल्कि लोगों को बरगलाने के लिए फूहड़, अश्लील, मसालेदार, व गरमा-गरम व फैशनेबल संस्कृति का ज़हर धीरे-धीरे परोसते रहते हैं। इस मुनाफ़ाखोर पूँजीवादी व्यवस्था के पास अमीरों की अयाशियों के लिये केरल व राजस्थान में 'वाटर अम्यूज़मेण्ट पार्क' बनाने के लिए 4 हज़ार से 6 हज़ार करोड़ रुपये की लागत के प्रोजेक्ट तो हैं, लेकिन देश की जनता को बेहतर पीने लायक जल मुहैया कराने का प्रोजेक्ट इन मुनाफ़ाखोरों की लिस्ट में कहीं दूर-दूर तक नहीं है। जो रहा-सहा पानी लोगों को मिल रहा है, उसका भी निजीकरण कर मुनाफ़ाखोरों को पानी से पैसा बनाने का खूब मौका दिया जा रहा है। देश के अमीरज़ादों की मौज-मस्ती के लिए कसीनो और गोल्फ क्लब जैसे अयाशी के अड्डे खोलने के लिए विधेयक पहले ही पास हो चुके हैं। उनकी चमचमाती गाड़ियों के आने-जाने के लिए विशेष एक्सप्रेस मार्ग बनाए जा रहे हैं। सौन्दर्यीकरण के नाम पर जनता का पैसा पानी की तरह इसलिए बहाया जा रहा है ताकि निवेशक इज़ारेदार शक्तियों को लुभाया जा सके। मुनाफ़ाखोरों व लुटेरों को गरीबों की झुग्गी-झोपड़पट्टियों को हटाकर आधुनिक शॉपिंग मॉल व मल्टीप्लेक्स आदि बनाने की खुली छूट बाकायदा सुप्रीम कोर्ट द्वारा दी जा रही है।

हैज़ा, तपेदिक, जैसी बीमारियों से जिस देश में हर वर्ष करोड़ों जानें जाती हों वहाँ पर एड्स का ढोल पीटा जा रहा है, जिससे इतनी जानें नहीं जाती हैं। यह ठीक है कि एड्स के प्रति जागरूकता लायी जानी चाहिए, लेकिन पहले उन बीमारियों के इलाज का तो उचित इन्तज़ाम हो जिनसे इतनी बड़ी संख्या में लोग मरते हों। लेकिन एड्स के पीछे आज एक पूरी ग्लोबल पॉलिटिक्स चल रही है। एड्स दरअसल कई एनजीओ और तथाकथित सुधार संस्थाओं के लिए एक बहुत बड़ा धंधा है जिसके बल पर उन्हें फण्डिंग एजेंसियों से करोड़ों डॉलर मिलते हैं। यही कारण है कि सरकार भी एड्स को लेकर कुछ ज़्यादा ही "चिन्तित" है।

नया वर्ष
उन दिलों के नाम
जिनमें अभी भी प्यार करने की
ताकत है
और जिनमें बसी है यह बात
कि बेहतर ज़िन्दगी के वास्ते
एक ताज़ा शुरुआत करने के लिए
कभी भी देर नहीं हुई रहती है!

महानगरों में तो लोग सरकारी सूचना के बावजूद हैण्ड पम्प का पानी पीने को मज़बूर हैं जिस पानी में लेड, आर्सेनिक, टिन, सीसा, जस्ता आदि विषैले तत्वों सहित लोहे की भी प्रचुरता मिलती है। इसीलिए महानगर की भारी आबादी में मूत्र नलिका सम्बन्धी संक्रमण, हाज़मे की समस्याएँ, श्वास नलिका सम्बन्धी रोग और मेटाबॉलिक डिसॉर्डर पाये जाते हैं। ये समस्याएँ उम्र भर लोगों का पीछा नहीं छोड़तीं। सरकारी अस्पतालों व डिस्पेंसरियों द्वारा दी जाने वाली स्वास्थ्य सुविधाओं की विश्वस्नीयता के बारे में कुछ कहने की ज़रूरत नहीं है। देश की राजधानी तक में नगर निगम की डिस्पेंसरियों का बुरा हाल है। यहाँ डॉक्टरों के बैठने का कोई नियमित समय नहीं है और साथ ही मामूली दवाओं तक का अभाव है। जो दवाइयाँ उपलब्ध होती हैं, वह मात्र दो खुराक से ज्यादा नहीं मिलती हैं। आस-पास गन्दगी इतनी ज़्यादा होती है कि नाक बन्द किये बगैर बगल से सकुशल गुज़रना मुश्किल होता है। आज सरकारी अस्पतालों की पैथोलॉजी लैब और ब्लड बैंक, निजी क्षेत्र के लैबों और मुनाफ़ाखोर पिशाचों पर निर्भर है जो मरीज़ों से मन-मुआफ़िक पैसा ऐंठती हैं। देश भर में किडनियों और मानव अंगों के व्यापार का गोरखधंधा तो बहुत पहले से चर्चा में था, मगर अब ग़रीबी से तंग आकर लोग अपना खून भी बेचने लगे हैं। समय-समय पर लगने वाले रक्तदान शिविरों से प्राप्त खून को पैथोलॉजी लैब इकट्ठा करके रक्त जाँच द्वारा ब्लड ग्रुप, एचसीबी, एचबी, बीडीआरएलबी, आदि चीज़ों की जाँच करती हैं और साथ ही यह भी पता लगाती है कि कहीं रक्त में किसी प्रकार के बैक्टीरिया तो नहीं हैं। इसमें करीब 600 रुपये का खर्च आता है लेकिन ये लैब मुनाफ़े की हवस के कारण इन सभी जाँचों को नज़रअन्दाज़ करते हुए एक यूनिट खून को 1300 से 1600 रुपये में बेचती है। हालाँकि सुप्रीम कोर्ट ने यह हिदायत दे रखी है कि खून की यूनिट तभी मिलेगी जब मरीज़ का कोई परिजन बदले में शुल्क के साथ खून भी दान करेगा, मगर मानव के खून का कारोबार करने वाले इन दरिन्दों को ग़रीबी से तंग आए लोग आसानी से एक यूनिट खून 100 से 200 रुपये में बेच रहे हैं। सम्बन्धित स्वास्थ्य अधिकारियों की जेबें गर्म करने के बाद ये लैब खून का कारोबार धड़ल्ले से चला रही हैं।

ये है आज देश की स्वास्थ्य सुविधाओं की हालत। इसके अलावा इस व्यवस्था से उम्मीद भी कुछ नहीं की जा सकती। यहाँ मानवीय जीवन और संवेदनाओं की कोई कीमत नहीं है। ऐसे में हमें यह समझ लेना चाहिए कि इस व्यवस्था के कर्ता-धर्ता वह कर रहे हैं जो उन्हें करना ही था, क्या हम वह नहीं करेंगे जो हमें करना चाहिए?

नया साल
अपने लोगों से प्यार
और दुश्मनों से नफ़रत के नाम,
उम्मीदों और सपनों के नाम!

उनकी तिजोरियाँ नोटों से हरी
जनता के लिए कुपोषण और भुखमरी

● गौरव, दिल्ली

हाँ, दोस्तो! यही आज का सच है। वैसे तो दुनिया ने हाल ही में नये साल का जश्न मनाया, लेकिन दुनिया को चलाने और बनाने वाली मेहनतकश जनता के पास जश्न मनाने की ज़्यादा वजहें नहीं थीं। 2005 में 60 लाख लोगों ने भुखमरी से दम तोड़ दिया। दुनिया में रोज़ाना करीब 1 लाख लोग कुपोषण से मर जाते हैं। संयुक्त राष्ट्र विश्व खाद्य कार्यक्रम (यूएनडब्ल्यूएफपी) के प्रमुख जेम्स मॉरिस को भी हाल ही में विश्व खाद्य दिवस के मौके पर यह स्वीकारना पड़ा कि विश्व में एड्स, तपेदिक, मलेरिया आदि जैसी बीमारियों के मुकाबले भूख से कहीं ज्यादा लोग मर जाते हैं। दशकों बीत जाने और तरक्की के हवाई दावों के बावजूद भूख से मरने वाले लोगों की तादाद में लगातार वृद्धि हुई है। नाइज़र में अगर बरसात सही समय पर नहीं आती तो हर रोज़ 450 बच्चों के माता-पिता उन्हें तड़प-तड़पकर भूख से मरते देखने के सिवा कुछ नहीं कर सकते। इस समय दुनिया भर में 10 करोड़ बच्चे भूख का शिकार हैं।

1990 के दशक में हुए कुछ परिवर्तनों के बाद पूँजीवाद के तलवे चाटने वाले और कुछ 'बिग मोनोपोलीज़' के फेंके हुए टुकड़ों पर पलने वाले कुछ बुद्धिजीवियों ने हर्षातिरेक में यह घोषणा कर डाली थी कि पूँजीवाद ही वह मंज़िल है जहाँ तक इंसान पहुँच सकता है, इसलिए आने वाला सम्पूर्ण मानवीय इतिहास पूँजीवाद का इतिहास होगा और इस तरह एक प्रकार से यह इतिहास अन्त है। आज पूँजीवाद के समक्ष कोई समानान्तर मॉडल नहीं खड़ा है। लेकिन दुनिया भर में ग़रीबों और अमीरों के बीच बढ़ती खाई, भुखमरी, कुपोषण, बेरोज़गारी का जो आलम है उससे कोई सामान्य व्यक्ति भी यह नतीजा निकाल सकता है कि कम से कम यह मानवता, सभ्यता और व्यवस्था का चरमोत्कर्ष नहीं हो सकता। पूँजीवाद अपनी अन्तिम विजय की चाहे जितनी भी उन्मादी घोषणाएँ कर ले, इस बात से मुँह नहीं चुरा सकता कि आज दुनिया भर में बेरोज़गारी और ग़रीबी के खिलाफ़ जनता का असन्तोष फूटकर सड़कों पर उतर रहा है। इसी बात से पूँजीवाद के दूरदर्शी शुभचिन्तक और वैचारिक तोपें काफ़ी चिन्तित हैं और लगातार पूँजीपति वर्ग को चेता रही हैं कि इतना मत लूटो कि जनता उठ खड़ी हो। लेकिन पूँजीपति भी बेचारे क्या करें? वे भी पूँजी के गुलाम हैं। वे पूँजी पर सवार नहीं होते बल्कि पूँजी उनपर सवार होती है। और पूँजी की यह प्रवृत्ति या प्रकृति होती है कि वह विस्तारित होती है या नष्ट हो जाती है। ऐसे में उसे नये बाज़ार चाहिए होते हैं। लूटने के लिए लोग चाहिए होते हैं। ऐसे में किसी ऐसे पूँजीवाद की कल्पना नहीं की जा सकती जो शराफ़त से लिहाज़ करके लूटे। लिहाज़ा, होना यही है, और यह होना शुरू भी हो गया है, कि आने वाले समय में पूँजी की सत्ता के ख़िलाफ़ बग़ावतें होंगी। लेकिन बग़ावतें समाज

नहीं बदलतीं। समाज क्रान्तियाँ बदलती हैं। बग़ावत को क्रान्ति में तब्दील करने के लिए विचारों की ज़रूरत होती है। अब यह आज के नौजवानों और छात्रों को तय करना है कि वे जनता की बग़ावतों को विचार और नेतृत्व देकर उस बेहद कठिन और जटिल ज़िम्मेदारी को निभाएँगे या नहीं, जो इतिहास ने उनके बलिष्ठ कंधों पर रखी है।

नये युग का आरम्भ!! क्या वाकई?

● प्रसेन, दिल्ली

हाल ही में, आश्चर्यजनक रूप से बिहार से 'लालू राज' ख़त्म हो गया! समोसे में तो अब भी आलू ही है, लेकिन बिहार में लालू नहीं है! लालू की हार पर बुर्जुआ मीडिया न जाने क्यों हर्षातिरेक में डूब गया। सारे के सारे चैनल ढिंढोरा पीट-पीटकर भाव-विभोर हुए जा रहे थे कि चुनाव आयोग ने तो कमाल कर दिया! बिहार में 'फ्री एण्ड फेयर इलेक्शन' करा दिया? कइयों ने तो यहाँ तक दावा कर दिया कि यह भारतीय जनतंत्र के लिए एक महान दिन है। इस 'निष्पक्ष एवं शांतिपूर्ण चुनाव' ने लोकतंत्र में जनता की आस्था बहाल कर दी! भई वाह!! बाज़ारू अखबारों के भाड़े के कलमघसीटों ने के. जे. राव का महिमामण्डन किया। उनको शेषन और खैरनार का उत्तराधिकारी घोषित किया गया। भारतीय शिक्षित शहरी उच्च मध्य वर्ग को एक नया हीरो मिल गया था।

लेकिन बुर्जुआ वर्ग के तलवेचाटों के इन "महान विश्लेषणों" को एक बार किनारे रख कर ज़मीनी सच्चाइयों की पड़ताल की जाए तो पता चलता है कि आधी से ज्यादा आबादी की पाँच साल पर होने वाले इस खेल में कोई रुचि नहीं थी। भारी सुरक्षा के बावजूद सिर्फ़ 46 प्रतिशत लोग ही वोट डालने गए। ऐसा भी नहीं था कि जनता ने नीतीश के "सुशासन और विकास" के नारे के आधार पर ही वोट कर दिया हो। आज़ादी के बाद के 58 वर्षों की लफ्फाजी के बाद कम से कम सुशासन और विकास के दावों से तो कोई जनता को मूर्ख नहीं बना सकता। अधिकांश वोट जाति आधार पर पड़े। यह एक सहायक कारक ज़रूर था कि जिन जातियों ने पहले लालू को खड़ा किया था, विकास के अभाव के दशकों बीत जाने के कारण उन्हीं जातियों ने लालू के ख़िलाफ़ भी वोट डाले। वहीं इन जातियों को लुभाने के लिए लालू-विरोधियों ने भी कई चालें चलीं थी। नतीजतन, लालू के ख़िलाफ़ नकारात्मक वोटिंग भी बड़े पैमाने पर हुई। लेकिन इस सारे खेल को बुर्जुआ मीडिया ने "सोशल इंजीनियरिंग" की संज्ञा दी!

बिहार चुनाव में "शांतिपूर्ण तथा निष्पक्ष" मतदान कराने के लिए चुनाव आयोग की उठा-पटक भी देखते ही बनती थी। शेषन और खैरनार के बाद अब पूँजीवादी लोकतंत्र के नये खेवनहार राव ने पूँजीवादी लोकतंत्र के नंगे हो चुके शरीर को ढाँपने-तोपने का जी-तोड़ प्रयास किया। अब यह बात दीगर है कि इसके बावजूद वह दो दर्जन से भी ज्यादा हिस्ट्रीशीटरों को विधानसभा में पहुँचने से नहीं रोक पाए। असल में पूँजीवादी जनतंत्र के इस पंचवर्षीय खेल में चुनाव आयोग की भूमिका एक रेफरी के समान होती है जो इस खेल में शामिल खिलाड़ियों (ध्यान रहे! इस खेल में जनता की हैसियत सिर्फ तमाशबीन की या मोहरों की हो सकती है, खिलाड़ी की नहीं!) को बीच-बीच में खेल के नियमों की याद दिलाता है। जब पिछले कई चुनावों में खिलाड़ियों 'फाउल' खेलकर गेम जीतने की होड़ में जुट गए तो ऐसे में चुनाव आयोग के माथे पर पसीने की बूँदें चुहचुहा आईं। नतीजतन, इस बार चुनाव आयोग ने राव के जरिये विभिन्न पार्टियों को यह समझाने की कोशिश की कि 'देखो अगर खेल बिना किसी नियम-कानून के चलेगा तो जनता का विश्वास इस पर से उठ जाएगा। और अगर जनता बिदक गई तो सारा खेल चौपट हो जाएगा! भई, खेल के नियम ही इस बात को ध्यान में रखकर बनाए गए थे कि खिलाड़ियों को कोई दिक्कत न हो, तो फिर उन्हें तोड़ने की क्या ज़रूरत?' राव, शेषन और खैरनार जैसे लोग पूँजीवाद की इसी चिन्ता की कोख से पैदा होने वाले लोग हैं।

लेकिन लाख कोशिशों के बावजूद पूँजीवादी जनतंत्र की गरिमा को बहाल करने में चुनाव आयोग असफल रहा। क्योंकि जब चेहरे के दाग कोढ़ बनकर फूटने लगें तो कौन-सा लेप लगाकर उसकी असलियत को छिपाया जा सकता है?

पूँजीवादी जनतंत्र आज इतना पतित हो चुका है कि संगठित लुटेरों के गिरोहों और पूँजीवादी राजनीतिक पार्टियों में कोई फर्क नहीं रह गया है। धर्म, जाति, क्षेत्र और भाषा आदि को लेकर जनता को आपस में लड़ाने में और उदारीकरण और निजीकरण की नई आर्थिक नीतियाँ लागू करने के मामले में सभी एकमत हैं। इसकी वजह बहुत साफ़ है। आज बड़े इजारेदार पूँजीपति वर्ग के साथ शहरी तथा देहात के छोटे पूँजीपति वर्ग के बीच लूट के माल के बँटवारे के रिश्ते बुनियादी तौर पर तय हो चुके हैं। और यही कारण है कि अवसरवादी गठबंधनों की एक बाढ़ सी उमड़ पड़ी है। चूँकि नीतिगत मसलों पर कोई विरोध नहीं है इसलिए जिसके साथ फायदा हो उसके साथ हो लो। नतीजतन, धर्म-निरपेक्षता का राग अलापने वाली कोई पार्टी आपको साम्प्रदायिकतावादी साँपों की बांबी में मिल सकती है और मज़दूरों के हितों की दुहाई देने वाले लाल तोते आपको पूँजीवादियों के

नया वर्ष
सिर्फ सपने से होने वाली
नयी शुरुआत के नाम,
पराजय की राख से
जनमते संकल्पों के नाम,
अँधेरे समय में
जीवित हृदय की कविता के नाम!

साथ मज़दूर-विरोधी नीतियाँ बनाते मिल जाएँ तो ताज्जुब न करें। नीतीश कुमार ने इसका एक ताज़ा उदाहरण ही तो पेश किया है। इतना तो साफ़ है कि 'नीतीश राज' में बिहार की कोई काया-पलट नहीं होने वाली। साफ़ शब्दों में कहा जाय तो बिहार के तख़्त पर साँपनाथ की जगह नागनाथ विराजमान हो गए हैं। लुटेरों का गिरोह भले ही बदल जाए, वे जनता के लिए लुटेरे ही रहते हैं। जब तक देश के युवा कोई क्रान्तिकारी विकल्प पेश नहीं करते तब तक विकल्पहीनता की स्थिति में नागनाथ और साँपनाथ बारी-बारी से आते-जाते रहेंगे।

कालाहाण्डी में लगती मज़दूरों की मण्डी

● योगेश, दिल्ली

यह बात सिद्धान्त के तौर पर तो हम जानते हैं कि पूँजीवाद जीते-जागते इंसान को भी एक माल बना देता है, लेकिन हाल ही में इसका एक उदाहरण भी देखने को मिल गया। भारत के कई पिछड़े हिस्सों में मज़दूरों को ख़रीदा और बेचा जा रहा है। ऐसे स्थान अब बाकायदा एक मण्डी का रूप ले चुके हैं। इन जगहों पर मज़दूरों को अच्छी दिहाड़ी का लालच देकर ठेकेदारों को बेच दिया जाता है।

वैसे तो देश के कई प्रदेशों में यह व्यापार होता है लेकिन कालाहाण्डी में यह एक व्यवस्थित रूप ले चुका है। इस व्यापार में लाखों-करोड़ों रुपयों का कारोबार होता है। यह वही कालाहाण्डी है जहाँ माँएँ अपने बच्चों को सौ-सौ रुपयों में बेचने को मज़बूर हो जाती हैं, जहाँ भूख और ग़रीबी के कारण बड़े पैमाने पर आत्महत्याएँ होती रहती हैं। कालाहाण्डी के उजड़ चुके छोटे किसान अब सर्वहाराओं के उमड़ते सागर का हिस्सा बन चुके हैं। यहाँ कई इलाकों में सूखा पड़ा हुआ है। इसी इलाके के गोदामों में अनाज अँटा पड़ा है। लेकिन राज्य सरकार ने अनाज के दाम गिरने से रोकने का तर्क देकर यह अनाज इन लोगों में वितरित करने से इंकार कर दिया। उजड़े किसान रोजी-रोटी की तलाश में शहर आने लगे। यह काम दरअसल इन मज़दूरों की ख़रीद-फ़रोख़्त के जरिए ही हुआ। यहाँ अब तक 2.5 लाख मज़दूर ठेकेदार के हाथ बिक चुके हैं। यहाँ गाँवों से लोगों को एजेण्टों के माध्यम से, जिन्हें गाँव में 'सरदार' कहा जाता है, शहरों में ले जाया जाता है। शहर में किसी शॉपिंग मॉल, इमारत आदि के बनने के समय तक ये मज़दूर एजेण्ट और ठेकेदार पर निर्भर रहते हैं। उन्हें 60 रुपये दिहाड़ी में दिन भर काम करना होता है और उनके रहने के लिए काम की जगह के पास ही उनके लिए दड़बेनुमा जगहें बना दी जाती हैं जहाँ बुनियादी सुविधाएँ भी नहीं होतीं। काम में छोटी-मोटी गलती होने पर इन्हें मारा-पीटा जाता है, दिहाड़ी रोक दी जाती है। पर काम छूट जाने के डर से वे ये सब कुछ सहते हैं। और जिन स्थितियों में यह काम होता है उसमें दुर्घटनाएँ होना लाज़िमी होता है। असल में, हर इमारत की नींव में ईंट और गारे के साथ कई मज़दूरों की लाशें भी होती हैं। जो दुर्घटनाओं में नहीं मरते वे बीमारी से मर जाते हैं। संयुक्त राष्ट्र की एक रिपोर्ट के अनुसार दुनिया में हर साल 22 लाख मज़दूर बीमारी से मर जाते हैं।

मज़दूरों के इन हालात से एक नतीजा एकदम साफ़ तौर पर निकलता है। दास व्यवस्था के अन्त के बाद दास भूदास बन गए थे। पूँजीवाद ने ज़मीन से बंधन को खत्म किया और किसानों की भारी आबादी को "मुक्त" कर मज़दूर बना दिया। लेकिन सिर्फ इसलिए कि वे उनकी गुलामी करें, जिसके बदले में उन्हें उजरत (मज़दूरी) दी जाएगी। दूसरे शब्दों में, मेहनतकश अवाम आज भी गुलाम ही है—उजरती गुलाम। कहने की ज़रूरत नहीं है कि कुछ भी स्थायी नहीं होता। हर चीज़ का आदि और अन्त होता है।

"एक क्रान्तिकारी सबसे अधिक तर्क में विश्वास करता है। वह केवल तर्क और तर्क में विश्वास करता है। किसी प्रकार का गाली-गलौच या निन्दा, चाहे वह ऊँचे से ऊँचे स्तर से की गई हो, उसे अपने निश्चित उद्देश्य प्राप्ति से वंचित नहीं कर सकती।"

('बम का दर्शन'
भगतसिंह, भगवती चरण वोहरा)

मक्सिम गोर्की

जन्मदिवस (28 मार्च के अवसर पर)

"...जीवन की उपयोगिता आत्म-सन्तोष में नहीं है, जो भी हो मनुष्य उससे ऊँचा तो है ही। जीवन की उपयोगिता है सौन्दर्य में और किसी लक्ष्य के लिए किए गए प्रयत्न की शक्ति में, मानव के प्रत्येक पल का एक उच्चतर लक्ष्य होना चाहिए। रोष, घृणा, अनुताप, वितृष्णा और अन्त में गम्भीर नैराश्य—यही वे शक्तियाँ हैं जिनसे तुम पृथ्वी पर की प्रत्येक वस्तु का नाश कर सकते हो। जीवन की प्यास तुम किसी में कैसे जगा सकते हो जब तुम धीरे से आदमी की ओर इशारा करके बस यह कहना जानते हो कि वह धूल से अधिक कुछ नहीं है?"

('एक पाठक' कहानी से)

वियतनाम युद्ध के तीस बरस : जनता के पराक्रम की अमर गाथा

● तपीश

बीसवीं सदी मेहनतकश अवाम के शानदार संघर्षों की सदी रही। इसने साम्राज्यवाद-पूँजीवाद पर 'अनपढ़ और पिछड़ी जनता' के विजय के 'चमत्कार' देखे। लेकिन बीसवीं सदी के अन्तिम दशकों तक स्थितियाँ बदल चुकी थीं। समाजवादी प्रयोगों के प्रथम चक्र की लड़ाइयाँ हारी जा चुकी थीं। चारों ओर पूँजीवाद के अमरत्व का शोर सुनाई देने लगा था। साम्राज्यवाद ने अमेरिकी अगुवाई में हुंकार भरी। इसका असर भले ही किसी पर पड़ा हो या न पड़ा हो लेकिन भाड़े के कलमघसीटों और इलेक्ट्रॉनिक भाण्ड पिकपिका उठे और लोगों को बताने लगे कि साम्राज्यवादी हाथी कितना विशाल और शक्तिशाली है लेकिन यह बात किसी से छिपी नहीं है कि साम्राज्यवाद का हाथी अरब के रेगिस्तान में धंस चुका है और जितना ही निकलने की कोशिश करता है उतना ही गहरे धंसता जाता है।

वर्ष 2005 में एक ऐसे शानदार जनसंघर्ष के विजय की तीसवीं वर्षगाँठ थी जिसने दिखला दिया कि युद्ध हथियार नहीं बल्कि जनता जीतती है। आज से तीस वर्ष पूर्व वियतनाम की जनता ने विश्व साम्राज्यवाद को ऐसा मुँहतोड़ जवाब दिया था कि इस मुद्दे पर अभी भी अमेरिका शरमाया-शरमाया सा और मुँह छिपाते घूमता है। और इसे बेहयाई कहें या मूर्खता कि फिर मुनाफे की हवस में अंधा होकर यह बुड्ढा साम्राज्यवादी हाथी अरब पहुँच गया। जैसे संकेत मिल रहे हैं, कहा जा सकता है कि इराक़ नहीं बल्कि पूरा अरब जो अमेरिका-विरोधी आग में धधक रहा है, अमेरिका के लिए 21वीं सदी का वियतनाम साबित होगा।

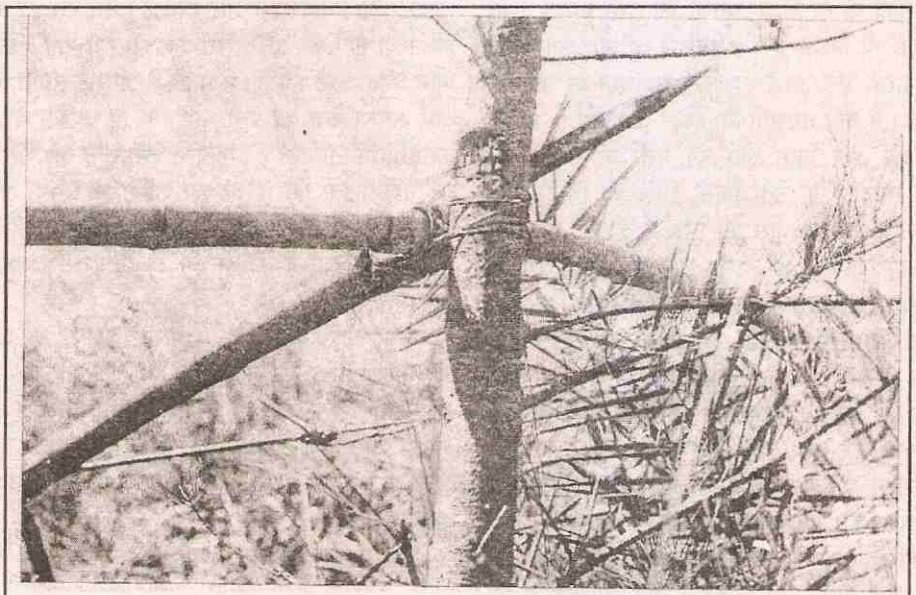

वियतनामी मुक्ति-योद्धाओं द्वारा बनाई गई बाँस की एण्टी एयरक्राफ्ट गन

अपनी आज़ादी के लिए संघर्ष करती वियतनामी जनता को गुलामी का जुआ ढोते रहने के लिए मजबूर करने और कम्युनिज़्म की विजय के डर से अमेरिका ने वियतनाम पर एक ऐसा युद्ध थोप दिया जिसमें लाखों की संख्या में वियतनामी स्त्री, पुरुष और बच्चे मारे गये, जिसने वियतनाम की भूमि को दशकों के लिए बंजर बना दिया। लेकिन फिर भी वह क्या चीज़ थी जिसने वियतनामी जनता के दुर्द्धर्ष संघर्ष को विजयी बनाया? वह कौन-सी ताकत थी जिसने तमाम अवर्णनीय दुखों के बावजूद वियतनामी जनता को निराश-हताश और पराजय-बोध का शिकार नहीं होने दिया और एक छोटे-से देश ने सैन्य और आर्थिक महाबली अमेरिकी की नाक एशिया में इस कदर रगड़ी कि वह आज तक लाल है?

अमेरिका ने अपनी 60 प्रतिशत पैदल सेना, 58 प्रतिशत नौसेना, 50 प्रतिशत वायुसेना, और 83 प्रतिशत विमानवाही पोत इस युद्ध में झोंक दिये थे। एक वियतनामी नागरिक पर 7 साम्राज्यवादी सैनिक भिड़ा दिये गये। पूरे वियतनाम पर 1 करोड़ टन बम बरसाये गये। और नतीजा? वियतनामी जनता ने अपने अद्वितीय शौर्य से यह साबित कर दिया किया साम्राज्यवाद अपराजेय नहीं है। अमेरिकी साम्राज्यवादियों को वियतनाम की शर्तों पर समझौता करने पर मजबूर होना पड़ा। आम लोगों के दिलों में अमेरिकी साम्राज्यवाद का ख़ौफ़ भरने वाले बड़ी मक्कारी से इस बात को छिपा जाते हैं। महाबली अमेरिका और उसकी उच्च सैन्य तकनोलॉजी का वियतनामी जनता ने बाँस से बनी एण्टी एयरक्राफ्ट गन और बेहद पिछड़ी यातायात और संचार व्यवस्था के बूते धुरछक बिगाड़ दिया। इसी से समझा जा सकता है

(पेज 43 पर जारी)

ईश्वर का बहिष्कार

(पेज 24 से जारी)

पर किसी व्यक्ति या समष्टि ने उन्हें जबरदस्ती नहीं लादा। जो ऐसे नियमों को मानते हैं, जिन्हें किसी डाकू या डाकुओं के गिरोह ने बनाकर अपने या कल्पित ईश्वर के नाम से जारी किया है वह क्या बज्र मूर्ख नहीं है? वह बिना सींग और पूँछ के पशु है और जो इस तरह नियम बनाकर धर्म या अधिकार के नाम पर उन्हें लोगों से मनवाते हैं वह जंगल के हिंसक पशुओं के मौसरे भाई हैं। अधिकार प्राप्त पुरोहितों, शासकों और धनपात्रों का यह स्वाभाविक लक्षण है कि वह जनसमूहों के दिल और दिमाग को—मन और बुद्धि को—मुर्दा बनाकर छोड़ देते हैं। इसलिए अधिकार प्राप्त लोगों के हृदय और मस्तिष्क दोनों कुत्सित होते हैं। यह कुत्सित हृदय लोग विद्वानों, वैज्ञानिकों, बड़े-बड़े लेखकों और वक्ताओं को धन देकर अपना गुलाम बना लेते हैं। हम तो रोज बड़े-बड़े सिद्धान्त की डींग मारने वालों, संन्यास का झण्डा उठाने वालों, राजनीति में बाल की खाल खींचने वालों, दम्भपूर्ण नेताओं को धनिकों के सामने कठपुतली की तरह नाचते देखते हैं। इनमें से एक भी निर्धन और गरीबों में रह कर, उनका सा जीवन व्यतीत करके उन्हें उनके स्वत्वों से सावधान या जानकार करने नहीं जाता। मैं नहीं समझता कि ईश्वर और धर्म किस मर्ज की दवा है? धर्म ज्ञान किस खेत की मूली या बथुआ है? सम्प्रदायों और समुदायों के नेता किस जंगल की चिड़िया हैं? आज यदि हम इस अन्धविश्वास को छोड़ दें, ईश्वर, धर्म और धनवानों के एजेण्टों व नेताओं से मुँह मोड़ लें। अपने पैरों पर खड़े हों, तो आज ही हमारा कल्याण हो सकता है। हम किसी की प्रतिष्ठा करने के लिए नहीं पैदा हुए, हम सबके साथ समान भाव से रहने के लिए जन्मे हैं। न हम किसी के पैर पूजेंगे न हम अपने पैर पुजवायेंगे,न हमें ईश्वर की जरूरत है, न पैगम्बर और अवतार की, न गुरु बनने वाले लुटेरों की।

न्यायनुमोदित, धर्मानुमोदित या उचित वही है जो बुद्धि-ग्राह्य हो, विज्ञानानुमोदित हो, मनुष्य-स्वातंत्र्य का संरक्षक हो। इसके विरुद्ध सारे अधिकार, सारी व्यवस्थाएँ मिथ्या हैं, त्याज्य हैं, अत्याचाराश्रित और घातक हैं। किसी ने ठीक ही कहा है कि 'हमारा अवतार और पैगम्बर विज्ञान है, हमारा धर्म विवेक है, हमारा खुदा संसार के मनुष्यों का समूह है।' ईश्वर और उसके आश्रित धर्म और राज्य दोनों ही मनुष्य के प्रधान शत्रु हैं। जहाँ अधिकार के नाम पर काम होता है वहीं ईश्वर और शैतान की पैदाइश होती है। दोनों ही अजीबुलखिलकत जीवों को धक्का देकर सुखी होने के लिए हमें इनके पिता 'अधिकार' का नाश करना ही श्रेयस्कर है। आज तक धर्म के नाम पर हमें लुटेरों ने जितना लूटा है, वह सब हम वापस लेने का प्रयत्न करें और सबसे प्रधान डाकू 'ईश्वर' के पैरों को महीमण्डल पर जमने न दें, यही हमारा इस समय प्रधान कर्त्तव्य है।

ईश्वर के पूजने वाले, दासवृत्ति का समर्थन करने वाले कहते हैं कि यदि धार्मिक बुद्धि वालों को देश का या और किसी संस्था आदि का काम सौंपा जाये तो वर्त्तमान् समाज भी बुरा नहीं है। कानून बुरा नहीं होता, बरतने वाले ही बुरे होते हैं। ईश्वर बुरा नहीं है, उसकी आज्ञा को न मानने वाले ही बुरे हैं। राजा अच्छा भी होता है, बुरा भी। बुरा राजा बुरा है। बुराई बुरी है, न कि राजा का पद ही बुरा है।

यह हमारे भोले भाइयों की नादानी है। भाँग बुरी नहीं है, हाँ, भाँग पीकर होश खो देने वाले बुरे हैं। वाह वा। मैं कहता हूँ कि कानून हो ही क्यों? न कानून होगा न कोई उसे बुरी तरह से बरतेगा। न खुदा होगा, न उसके नाम पर हजारों लाखों टन कागज रद्दी किया जायेगा। मनुष्य यदि सोचकर अपने समाज का संगठन करें, तो वह ईश्वर, राजा, कानून के बिना भी बहुत आनन्द के साथ रह सकते हैं। खास कर खुदा जैसी पहेली तो नितान्त ही अनावश्यक और व्यर्थ है। मैंने गत 27 वर्षों से खुदा की परवा नहीं की, इससे मेरा कुछ भी हर्ज नहीं हुआ, उलटे सब काम बहुत अच्छे हुए हैं। मैं पहले से अधिक संयमी, मनुष्य-भक्त और समाज-सेवा का प्रेमी बन गया हूँ, क्योंकि मैं अपने कामों को ही प्रधानता देता हूँ। हिन्दू महासभा के सभापति की तरह मैं यह नहीं कहता कि 'ईश्वर हमें शक्ति से भर दें, हमें हिम्मत दें और हे सरकार हमारी रक्षा कर, हम तुझे चेतावनी देते हैं कि यदि तू ने हमारी रक्षा न की तो हम रो देंगे। तेरे परदादा ईश्वर का नाम ले-लेकर हाय-हाय मचावेंगे।'

मैं कहता हूँ कि मनुष्य बल से पूर्ण है, वह उसी से काम ले। भीख माँगना, प्रार्थना करना, हमें नीच और कायर बनाता है, जो ज्यादा गायत्री जपी जायेगी तो हिन्दू भी चोरी, डकैती, लड़कों, औरतों का चुराना आदि नीचता सीख लेंगे। ईश्वर मूर्खों के लिए अँधेरे का घर है। बस, इस सम्बन्ध में इस समय मैं अपना वक्तव्य समाप्त करता हूँ।

('माधुरी', नवम्बर 1925 से फरवरी 1926 तक)

नया वर्ष
विस्मृति के विरुद्ध संघर्ष के नाम,
अभिव्यक्ति के रुकने उठाने के
फ़ैसले के नाम,
कल्पनालोक की मुक्ति के
संकल्प के नाम!

सिलिकॉसिस–एक धीमी और निश्चित मौत

● दिगान्तर

आप इतने पढ़े लिखे और सामर्थ्यवान हैं कि यह पत्रिका पढ़ सकें। नहीं तो हमारे ही देश में न जाने ऐसे कितने करोड़ शख़्स हैं जो पढ़-लिख नहीं सकते। आप इतने सामर्थ्यवान और क़ाबिल कैसे बने? शायद आपका जवाब हो–अपने माँ-बाप या परिवार वालों की बदौलत जिन्होंने आपको स्कूल भिजवाया। लेकिन इस लेख का लेखक कहना चाहता है कि आपकी इस काबिलियत के जिम्मेदार केवल आपके परिवार वाले ही नहीं हैं बल्कि वे हज़ारों शख़्स भी हैं जो अब इस दुनिया में नहीं हैं या अगर हैं भी तो उनकी बाकी बची ज़िन्दगी अधिक नहीं है। हो सकता है कि आपको ये बातें पहेली जैसी लगें। तो ठीक है इसी बात को और स्पष्ट शब्दों में कहा जाय। बचपन में आपने जिस स्लेट पर, जिस पेंसिल से लिखना व पढ़ना सीखा, उसे आप तक पहुँचाने में तमाम बाल श्रमिकों ने अपनी ज़िन्दगी के 20 से 25 साल गवाँ दिये। इन्होंने ग्रेनाइट, सिलिका व ग्रेफाइट की खदानों में 12 से 14 घण्टे काम करके स्वयं को टी.बी. व सिलिकोसिस का रोगी बना लिया। उन बाल श्रमिकों ने अपना बचपन गवाँया तक जाकर हम जैसे तमाम लोगों का बचपन सँवरा। आपके स्कूल की इमारत में इस्तेमाल होने वाला सीमेण्ट, खिड़कियों व रोशनदानों पर लगने वाला काँच, प्रयोगशालाओं-दफ़्तरों व आपके चश्मे में इस्तेमाल होने वाला लेंस, रसोई में खाद्य सामग्री रखने के लिए इस्तेमाल होने वाले सिलिका मिट्टी के बर्तन आदि अनेक चीज़ों में सिलिका का प्रयोग होता है, जिसे सिलिका खदान श्रमिक अपनी ज़िन्दगियों को दाँव पर लगाकर पैदा करते हैं।

उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद जिले में शंकरगढ़ वह गाँव है जहाँ पर सिलिका की खदानों में खनन का काम होता है। इस गाँव में लगभग 150 परिवार रहते हैं जिनमें से प्रत्येक व्यक्ति, औरत और अधिकांश बच्चे सिलिका की खदानों में काम करते हैं। यहाँ पर श्रमिक सिलिका पत्थर तोड़ते-फोड़ते हैं। इसकी धूल साँस के रूप में वे अन्दर लेते हैं। नतीजतन, वे टी.बी. के मरीज़ हो जाते हैं। इस गाँव के हर परिवार में औसतन एक टी.बी. मरीज़ है।

राम जीवन एक खदान श्रमिक है। अपने बचपन से अब तक, यानी 30 वर्षों तक, लगातार उसने सिलिका पत्थर तोड़ने का काम किया है। इस पूरे दौर में वह लगातार ज़हरीली सिलिका की धूल के वातावरण में साँस लेता रहा है। आज वह इतना कमज़ोर हो चुका है कि सीधा होकर चल भी नहीं सकता, बोलते-बोलते उसकी साँस उखड़ने लगती है। पिछले डेढ़ साल से वह टी.बी. का इलाज करा रहा है लेकिन दवाइयों का कोई असर नहीं हो रहा है। उसकी पत्नी बकरियाँ चराती है। वह अपने बुखार और खाँसी की परवाह न करते हुए इलाज की बात को यह कहकर टाल देती है कि एक आदमी के इलाज का ख़र्च नहीं निकलता तो दो का कैसे निकलेगा। गाँव की इसी खान नं. 5 में ऐसे बहुत से लोग हैं जिनको टी.बी. है। पहले हालत और ख़राब थी जब सिर्फ 15-20 रुपये ही दिहाड़ी मिलती थी। लेकिन फिर खदान श्रमिकों ने एकजुट होकर विद्रोह किया जिसे 'हल्ला बोल' के नाम से जाना जाता है। परिणामस्वरूप दिहाड़ी बढ़कर 45-50 रुपये हो गई। यहाँ की अधिकतर ज़मीन को सरकार ने 99 साल की लीज़ पर शंकरगढ़ के राज को दी थी, जिसे उसने बाद में ठेकेदारों को पट्टे पर दे दिया। लम्बे समय तक लोग बंधुआ मज़दूरों की तरह कौड़ियों के भाव पर यहाँ काम करते थे। आखिरकार 1980 के दशक के अन्त में और 1990 के दशक की शुरुआत में श्रमिकों ने विद्रोह करके कुछ स्वतंत्रता प्राप्त की। इलाहाबाद के तमाम श्रमिकों में से शायद ही किसी ने सिलिकोसिस का नाम सुना होगा। वे बस इतना जानते हैं कि उनमें से हर तीसरा व्यक्ति टीबी का रोगी है और उसकी औसत आयु 40 वर्ष है। लोगों ने इस बीमारी को 'शंकरगढ़ वाली टी.बी.' कहकर पुकारना शुरू कर दिया।

लेकिन दरअसल यह बीमारी सिलिकोसिस है। यह एक लाइलाज बीमारी है, जो लम्बे समय के दौरान पनपती है। इसके लक्षण टी.बी. से मिलते-जुलते हैं। वैसे तो सिलिकोसिस को रोकने के लिए तमाम राज्य सरकारों ने कानून बनाए हैं, जैसे–राजस्थान सिलिकोसिस नियम-1955, राजस्थान कामगार मुआवजा (व्यावसायिक रोग) नियम-1965, आदि। लेकिन इन तमाम कानूनों के बावजूद सिलिकोसिस को रोका नहीं जा पा रहा है।

वजह साफ़ है। मुनाफ़े की अंधी दौड़ में मज़दूरों के स्वास्थ्य से ठेकेदारों का क्या लेना-देना। हालाँकि कई स्वयंसेवी संगठन और नागरिक मज़दूरों के अधिकारों आदि के लिए जनहित याचिकाएँ दायर की हैं लेकिन इन सब क़ानूनी दाँव-पेचों से कुछ नहीं होने वाला। क़ानून तो यह भी है कि किसी भी व्यक्ति से न्यूनतम मज़दूरी से कम पर काम न लिया जाय। लेकिन आज भी करोड़ों मज़दूर चाहे वे खदानों में हो, कारखानों में हों, या खेतों में, उनसे न्यूनतम मज़दूरी से भी कम दिहाड़ियों पर काम करने को मजबूर हैं।

सोचने की बात यह है, कि यह सब कुछ बुरे व्यक्तियों की वजह से नहीं हो रहा है बल्कि यह इस व्यवस्था की प्रकृतिजनित समस्या है। जिस व्यवस्था में हर चीज़ बिकाऊ माल होता है उसमें आदमी भी बिकाऊ माल ही बन जाता है। फिर न उसके स्वास्थ्य की कोई क़ीमत होती है न उसके जीवन की। अब देश के नौजवानों को सोचना यह है कि जिन लोगों की मेहनत के बूते वे पढ़ पा रहे हैं, कपड़े पहन पा रहे हैं, उनके प्रति वे असंवेदनशील बने रहेंगे या किसी ऐसे समाज के निर्माण के बारे में सोचेंगे जिसमें मानव जीवन का ऐसा अपमान न होता हो, और किसी को भी ऐसा जीवन जीने पर मजबूर न किया जा सके जैसा इलाहाबाद के शंकरगढ़ गाँव के सिलिका खान श्रमिकों को जीना पड़ता है।

फ्रांस में सड़कों पर बह निकला आक्रोश का लावा

• लता

फ्रांस ने दुनिया को "स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व" का नारा दिया। फ्रांस दुनिया भर में अपनी जनवादी परम्पराओं के लिए जाना जाने वाला देश है। लेकिन हाल ही फ्रांस में हुई नौजवानों की बग़ावत (जिसे बुर्जुआ मीडिया ने "दंगे" की संज्ञा दी) ने फ्रांस की इस छवि पर एक बदनुमा दाग़ लगा दिया। इसके कारणों की पड़ताल लम्बे समय तक चलती रहेगी। लेकिन इस घटना ने यह दिखला दिया कि असमान पूँजीवादी विकास से जो विकृतियाँ पैदा होती हैं वह कभी भी पूँजीवाद को 'स्मूदली' नहीं चलने देतीं। यह बात अर्थतंत्र की अराजकता में ही नहीं दिखती बल्कि नस्ली हिंसा, उत्पीड़न और उसके ख़िलाफ़ खड़े होने वाले प्रतिरोध जैसे सामाजिक मुद्दों में भी प्रतिबिम्बित होती है।

वर्षों से बेकारी, अभाव और नस्ली अपमान झेलती फ्रांस की अरब-अफ्रीकी मूल की आबादी का आक्रोश सड़कों पर लावा बनकर बह निकला। जिस घटना से इस बग़ावत की शुरुआत हुई वह तो निमित्त मात्र थी। राजधानी पेरिस के एक उपनगर में अरब-अफ्रीकी मूल के दो किशोर पुलिस की जाँच से बचने के लिए एक बिजली घर में छिप गये थे जहाँ करेण्ट लगने से उनकी मौत हो गयी। स्थानीय युवा और नागरिक इस घटना के विरोध में सड़कों पर उतर आये। इसके बाद फ्रांस के गृहमंत्री निकोलस सरकोज़ी के बयान से इस घटना ने तूल पकड़ लिया कि स्थानीय उपनगर में रहने वाले अरब-अफ्रीकी मूल के लोग समाज के कचरे हैं। एक दिन बाद एक मस्जिद बम विस्फोट की घटना से नौजवानों का गुस्सा बेकाबू हो गया। यह बग़ावत शुरू तो अरब-अफ्रीकी मूल के नौजवानों ने की लेकिन जल्दी ही उनसे फ्रांस की मूल आबादी के बेरोज़गार नौजवान भी जुड़ने लगे। अपने गुस्से की आग में नौजवानों में दो हज़ार से अधिक कारों, तमाम स्कूली इमारतों, व्यावसायिक प्रतिष्ठानों और सत्ता के तमाम केन्द्रों को जला दिया। साथ ही नौजवानों ने सड़कों पर पुलिस के साथ छापामार ढंग से ज़बर्दस्त मुठभेड़ें कीं। एक घटना के माध्यम से जो आक्रोश उबल पड़ा था उसे हज़ारों की तादाद में मौजूद पुलिसकर्मी भी नहीं नियंत्रित कर पाये। तोड़-फोड़ और आगजनी की बढ़ती घटनाओं के मद्देनज़र सरकार ने अपने सारे हथियार आजमा लिये। कर्फ्यू लगाया गया और आपातकाल की घोषणा की दी गई। साथ ही पुलिस को तलाशी और गिरफ्तारी का बेलगाम अधिकार दे दिया गया। लेकिन जल्दी फ्रांसीसी सरकार को यह बात समझ में आ गई कि इससे बात और बिगड़ सकती है। लिहाज़ा इसमें से एक भी कदम पर कठोरता से अमल नहीं किया गया। यह बात फ्रांस सरकार में बैठे घाघ चिन्तकों को समझ में आ रही थी कि यह स्वतःस्फूर्त रूप से फूटा गुस्सा है जिसके पास कोई दिशा नहीं है। इसको अगर उदारता से सम्भाला जाय तो मामला जल्दी ही खत्म किया जा सकता है। जबकि सख्ती करने से इस संघर्ष के और प्रचण्ड होने और कालान्तर में कोई दिशा अर्जित कर लेने के ख़तरे थे। जल्दी ही इस बग़ावत पर काबू पा लिया गया। लेकिन यह बग़ावत पश्चिमी समाज की जनता और सभी को ही सोचने के कई मुद्दे दे गई।

नौजवानों के इस स्वतःस्फूर्त विद्रोह ने पश्चिमी देशों की गुलाबी तस्वीर पर एक काला धब्बा लगा दिया। फ्रांस में अरब-अफ्रीकी मूल की इस आबादी का इतिहास द्वितीय विश्व युद्ध से शुरू हुआ। इन वर्षों में फ्रांसीसी अर्थव्यवस्था का तीव्र विकास हो रहा था। सस्ते श्रम की बढ़ती माँग को पूरा करने के लिए सरकार ने अरब-अफ्रीका और पश्चिमी अफ्रीका के अपने भूतपूर्व उपनिवेशों के लोगों को लाकर उपनगरों में बसाया था। उस समय उन्हें न केवल रोज़गार की गारण्टी दी गई बल्कि उन्हें आवास, शिक्षा, स्वास्थ्य तथा अन्य नागरिक सुविधाएँ भी मुहैया कराई गईं थीं। उनके रहने के लिए बहुमंज़िली इमारतों का निर्माण कराया गया। अल्जीरिया, ट्यूनीशिया, मोरक्को, गिनी बिसाऊ, आइवरी कोस्ट जैसे देशों से आई इस ग़रीब आबादी के लिए रोज़गार की गारण्टी और ये सुविधाएँ उनके अपने देश की परिस्थितियों की तुलना में नेमतों के समान थीं। लेकिन उनके लिए ये परिस्थितियाँ डेढ़-दो दशक बाद ही बदलने लगीं।

1973 के तेल संकट और उसके फलस्वरूप विश्व-पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के संकटों का असर फ्रांसीसी पूँजीवादी अर्थव्यवस्था पर भी पड़ा। बड़ी तादाद में फ्रांस के कारखानों में छँटनी और तालाबन्दी का सिलसिला शुरू हो गया। रोज़गार की अनिश्चितता पैदा हुई। अरब-अफ्रीकी मूल की आबादी को दी गई तमाम आवासीय और नागरिक सुविधाओं की हकीकत सामने आने लगीं। इन बहुमंज़िली इमारतों के निर्माण में दोयम दर्ज़े की सामग्री इस्तेमाल की गई थी। धीरे-धीरे कम होता रोज़गार नागरिक सुविधाओं की बदहाली और रंगभेद ने जिस प्रकार की नारकीय जीवन स्थितियाँ पैदा कीं उससे इस अप्रवासी आबादी की आँखें खुल गईं। उन्हें अहसास होने लगा कि जिन सुविधाओं को वे नेमत समझते थे, वे मात्र इस देश की अर्थव्यवस्था की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए थीं। इस दौरान इस आबादी की नयी पीढ़ी युवा हो चुकी थी। यह पीढ़ी पूरी तरह फ्रांस में जन्मी, पली और बढ़ी थी। यह युवा पीढ़ी अपने आपको फ्रांस का नागरिक मानती है। अपने अधिकार वह अन्य किसी भी श्वेत युवा के समान मानती है। लेकिन पूँजीवादी व्यवस्था के गहराते संकट और अश्वेत फ्रांसीसी युवाओं के बीच बढ़ती बेरोज़गारी ने नये सिरे से उसे नस्लवादी भेदभाव की ज़मीन भी तैयार कर दी। इसका प्रभाव इतना व्यापक है कि सरकारी मशीनरी और बुर्जुआ राजनीति भी इससे अछूती नहीं है।

कुछ तथ्यों की जाँच-पड़ताल से यह पता लगाया जा सकता है कि आज फ्रांस में यह अरब-अफ्रीकी मूल की आबादी किन जीवन परिस्थितियों से होकर गुज़र रही है। इनकी आबादी फ्रांस में लगभग 60 लाख के लगभग है। इनमें से 30 लाख लोग बेरोज़गार हैं। नौजवानों में बेरोज़गारी 50 प्रतिशत से भी अधिक पहुँच चुकी है। इतना ही नहीं यह आबादी कदम-कदम पर चाहे वह सरकारी दफ्तर हो, पुलिस महकमा हो, या सामाजिक जीवन के अन्य क्षेत्र

(पेज 48 पर जारी)

फेदेरिको गार्सिया लोर्का की एक कविता

एक दमकता इस्पात जैसा ढला गीत
विचार से समृद्ध
पछतावे और पीड़ा से अम्लान
उड़ान भरे सपनों से बेदाग़
एक गीत जो चीज़ों की आत्मा तक
पहुँचता हो, हवाओं की आत्मा तक
एक गीत जो अन्त में अनन्त हृदय के आनन्द में
विश्राम करता हो।

(स्पेन के महान क्रान्तिकारी कवि,
36 वर्ष की उम्र में जनरल फ्रांको की तानाशाही
के ख़िलाफ़ लड़ते हुए शहीद हुए।)

अराजनीतिक बुद्धिजीवी

● **ओतो रेने कास्तिलो**

एक दिन
हमारी जनता का
सबसे मामूली आदमी
इस देश के
अराजनीतिक
बुद्धिजीवियों से
जिरह करेगा
उनसे पूछा जाएगा
किस उन्होंने क्या किया
जब उनका देश नष्ट हो रहा था
एक शान्त चिता की तरह
चुपचाप
छोटा और अकेला
कोई नहीं पूछेगा उनसे
उनकी पोशाक के बारे में
भोजन के बाद आराम की
लम्बी दोपहरों के बारे में
कोई जानना नहीं चाहेगा
"कुछ नहीं के दर्शन" से
उनकी बाँझ लड़ाइयों के बारे में
उनकी समृद्ध आर्थिक समझ पर
कोई ज़रा भी गौर नहीं करेगा
कुछ भी नहीं पूछा जाएगा उनसे
ग्रीक मिथकों के बारे में
अथवा उनकी आत्म-घृणा के सन्दर्भ में
जब उनमें से कोई
मरने लगेगा
कायरों की मौत
उनसे कुछ भी नहीं पूछा जाएगा
उनके वाहियात
स्पष्टीकरणों के बारे में
जो कि साफ़-साफ़ झूठ की
छाया में उपजे हैं
और उस दिन
सबसे मामूली लोग आएँगे
वे, जिनके लिए कहीं जगह नहीं है
अराजनीतिक बुद्धिजीवियों की
किताबों और कविताओं में
लेकिन जो रोज़ पहुँचाते रहे
उनके लिए तौर्तिलिया और अण्डे
वे, जिन्होंने उनके कपड़े रफू किए हैं
जिन्होंने उनकी गाड़ियाँ चलाई हैं
जिन्होंने उनके कुत्तों और बाग़ीचों की
रखवाली की है
और उनका काम किया है।

मार्क ट्वेन की दो कहानियाँ

एक अच्छे छोटे लड़के की कहानी

आलोचनात्मक यथार्थवाद की धारा की अभिव्यक्तियाँ उतने ही किस्म की थीं जितने किस्म के आलोचनात्मक यथार्थवादी थे। सब अनूठे। लेकिन इनमें भी मार्क ट्वेन का स्थान अद्वितीय है। मार्क ट्वेन ने सम्पत्ति-केन्द्रित समाज के मूल्यों, संस्कृति और रूढ़ियों पर चोट की।

वह आलोचनात्मक यथार्थवाद की कोई कड़ी न होकर उसके ऐसे पुरोधा हैं जो स्वयं एक ध्रुव तारे के समान हैं।

आज हमारे समाज में जैसी रूढ़ियाँ हैं, उसके मद्देनज़र हम महसूस करते हैं कि मार्क ट्वेन जिस तीखी और मारक शैली में रूढ़ियों पर चोट करते हैं, उन्हें यहाँ पढ़ने का एक विशेष महत्व है। भारतीय समाज उपभोक्ता सामग्रियों के इस्तेमाल में तो अव्वल है, लेकिन अपनी रूढ़ियों और दकियानूसी विचारों में भी उसे अव्वल कहा जा सकता है। ऐसे में मार्क ट्वेन की ये दो कहानियाँ विशेष तौर पर प्रासंगिक हैं। 1875 में लिखी गयी इन क़हानियों में नैतिकता के आदर्श और असल ज़िन्दगी के फर्क को दिखला कर, खोखली नैतिक शिक्षाओं पर चोट की गई है।

–सम्पादक

एक बार की बात है कि एक अच्छा लड़का था जिसका नाम जैकब ब्लिवेंस था। वह हमेशा अपने माता-पिता की बात मानता था, चाहे उनकी मांगें कितनी भी बेहूदा और नावाजिब क्यों न हों। वह हमेशा अपनी किताब पढ़ता था, और रविवारी स्कूल में कभी भी देर से नहीं पहुँचता था। वह कभी हूकी नहीं खेलता था, तब भी जब उसका संयमित निर्णय उसे यह बताता था कि इससे फायदेमन्द और कोई चीज़ वह नहीं कर सकता है। वह इतने अजीब तरीके से हर काम करता था कि कोई भी दूसरा लड़का उसका मतलब नहीं समझ पाता था। झूठ बोलना चाहे जितना भी आसान हो, वह कभी झूठ नहीं बोलता था। वह बस इतना कहता था कि झूठ बोलना ग़लत है, और बस यही उसके लिए काफ़ी था। और साथ ही वह मज़ाकिया होने की हद तक ईमानदार था। जैकब के अजीबो-ग़रीब तरीके सारी हदों को पार कर जाते थे। वह रविवार को कंचे नहीं खेलता था, वह पक्षियों के घोंसलों को तबाह नहीं करता था, वह ऑर्गन बजाने वाले मदारियों के बन्दरों को गर्म मूँगफलियाँ नहीं देता था; वह किसी भी तरह के तार्किक मनोरंजन में कोई दिलचस्पी नहीं लेता था। इसलिये दूसरे लड़के उसका तर्क ढूँढने और उसे समझने की जी-तोड़ कोशिश में लगे रहते थे, लेकिन वे किसी सन्तोषजनक नतीजे तक नहीं पहुँच पाते थे। जैसा कि मैंने पहले भी कहा है, वे केवल इस धुंधले से अन्दाज़े तक ही पहुँच पाते थे कि वह "पीड़ित" है। वे उसे सुरक्षा देते थे और उसे कभी कोई नुकसान नहीं होने देते थे।

यह अच्छा छोटा लड़का रविवारी स्कूल की सभी किताबें पढ़ता था; उसमें उसे सबसे अधिक मज़ा आता था। इन्हीं किताबों में सारा रहस्य छिपा था। वह रविवारी स्कूल की किताबों में बताए गए छोटे अच्छे लड़कों में विश्वास करता था; उसका उनमें बड़ा विश्वास था। वह उनमें से किसी एक जीवित लड़के से सिर्फ़ एक बार मिलना चाहता था; लेकिन उसे ऐसा कोई लड़का कभी नहीं मिला। वे सभी शायद उसका युग आने से पहले ही मर चुके थे। जब वह किसी विशेष रूप से अच्छे लड़के के बारे में पढ़ता तो तुरन्त पन्ने पलटते हुए पीछे पहुँच जाता ताकि यह जान सके कि उस लड़के का आख़िर में हुआ क्या, क्योंकि वह किसी भी तरह उनसे मिलना चाहता था; लेकिन इसका कोई लाभ नहीं होता था; क्योंकि अच्छे छोटे लड़के हमेशा आखिरी अध्याय में मर जाते थे और अन्तिम संस्कार का एक दृश्य होता था, जिसमें उसके सभी रिश्तेदार होते थे और काफ़ी छोटी पतलूनों और काफ़ी बड़ी टोपियों में रविवारी स्कूल के बच्चे मौजूद होते थे और हर कोई डेढ़ गज लम्बे रुमाल चेहरे पर लगाए रो रहा होता था। वह हमेशा इसी नतीजे पर पहुँचता था। वह कभी ऐसे अच्छे लड़कों को नहीं देख पाया क्योंकि वे हमेशा अन्तिम अध्याय में मर जाते थे।

जैकब की यह नेक महत्वाकांक्षा थी कि वह भी रविवारी स्कूल की किताबों में दर्ज हो जाए। वह उसमें ऐसी तस्वीरों के साथ चित्रित होना चाहता था जिसमें उसे गौरवशाली ढंग से अपनी माँ से झूठ बोलने से इंकार करते हुए, और उसकी मां को इस बात पर खुशी से रोते हुए दिखलाया गया है। उसमें ऐसे चित्र होंगे जो उसे दरवाजे पर खड़ी छः बच्चों वाली एक ग़रीब भिखारन को एक टका देते हुए, उसे मुक्त रूप से खर्च करने को, लेकिन फ़िजूलखर्च न होने की नसीहत देते हुए दिखलाया गया है, क्योंकि फ़िजूलख़र्ची पाप होती है। ऐसे चित्र भी होंगे जो उसे उदारतावश उस बुरे लड़के की शिकायत करने से इंकार करते हुए दिखलाएँगे जो हमेशा स्कूल से लौटते समय एक कोने में उसका इन्तज़ार करता रहता है, और जो एक फट्टी से उसके सिर पर चोट करता है और फिर घर तक "ही!ही!" करते हुए उसका पीछा करता है। यह थी जैकब ब्लिवेंस की चाहत। वह रविवारी स्कूल की किताब में दर्ज होना चाहता था। इस बात से कभी-कभी उसे थोड़ी दिक्कत का अनुभव होता था कि अच्छे छोटे लड़के हमेशा मर जाते हैं। उसे जीने से प्यार था, और आप समझ ही सकते हैं कि रविवारी स्कूल की किताब का अच्छा बालक होने का सबसे अप्रिय पहलू यही था। वह जानता था कि इतना अच्छा होना स्वास्थ्य के लिए अच्छा न था। वह जानता था कि किताबों में चित्रित लड़कों की हद तक दैवीय रूप से अच्छा होना क्षय से भी ज़्यादा ख़तरनाक था। वह जानता था कि उनमें से कोई भी

बहुत दिनों तक टिक नहीं पाया था, और यह सोचकर उसे काफ़ी तकलीफ़ होती थी कि अगर लोगों ने उसे रविवारी स्कूल की किताब में दर्ज भी किया तो वह उसे कभी नहीं देख पाएगा, या अगर वह किताब उसके मरने से पहले छप भी जाए तो उसके अन्त के अध्यायों में अन्तिम संस्कार के दृश्य के बिना वह इतनी लोकप्रिय नहीं हो पाएगी। अगर उस रविवारी स्कूल की किताब में जनसमुदाय को उसके द्वारा मरते हुए दी गई सलाह नहीं होती तो वह रविवारी स्कूल की किताब कैसे कहलाती। इसलिए अन्ततः, जाहिर है, कि उसने यही मन बनाया कि मौजूदा परिस्थितियों में जो उससे बन पड़ेगा वह करेगा—वह सही तरीके से जियेगा, और दृढ़ता से जब तक कर सकेगा ऐसा ही करता रहेगा और अपना समय आने से पहले ही अपने मरते समय वाला भाषण तैयार रखेगा।

लेकिन पता नहीं कैसे इस अच्छे छोटे लड़के साथ कुछ भी सही नहीं होता था। उसके साथ कभी भी वैसा नहीं होता था जैसा कि किताब वाले छोटे अच्छे लड़कों के साथ होता था। उनका समय हमेशा अच्छा चलता था जबकि बुरे लड़के अपनी टाँगें तुड़ा बैठते थे; लेकिन इस मामले में कहीं कोई पेंच ढीला था। सबकुछ ठीक इसका उल्टा होता था। जब उसने जिम ब्लेक को सेब चुराते देखा तो वह उसे उस बुरे लड़के के बारे में पढ़कर सुनाने के लिए पेड़ के नीचे गया जो पड़ोसी के सेब के पेड़ से गिरकर अपनी बाँह तुड़ा बैठा था। जिम भी पेड़ से गिरा लेकिन वह जैकब के ऊपर ही गिर पड़ा, और जैकब की बाँह टूट गयी, जबकि जिम का बाल भी बाँका न हुआ। जैकब कुछ समझ नहीं पाया। किताबों में तो ऐसा कुछ भी नहीं था।

और एक बार, जब कुछ बुरे लड़कों ने एक अंधे को धक्का देकर कीचड़ में गिरा दिया तो जैकब उसकी मदद करने और उसकी दुआएँ पाने के लिए दौड़ा, लेकिन उसे अंधे ने उसे कोई दुआ नहीं दी, बल्कि उसके सिर पर छड़ी से मारा और कहा कि अगली बार वह उसे धक्का देकर गिराने और फिर मदद करने का नाटक करने से पहले पकड़ना चाहेगा। यह भी किताबों के मुताबिक नहीं हुआ। जैकब ने ऐसी कोई घटना ढूँढने के लिए उन्हें शुरू से अन्त तक पलट डाला।

एक चीज़ जो जैकब करना चाहता था वह था किसी ऐसे लंगड़े कुत्ते को ढूँढना जिसके पास कोई ठिकाना न हो, जो भूखा हो और सताया गया हो, और उसे वह घर लाकर पालना चाहता था और उस कुत्ते का जीवनपर्यन्त आभार हासिल करना चाहता था। आख़िर में उसे एक ऐसा कुत्ता मिल ही गया। वह काफ़ी खुश था। वह उसे घर ले आया, उसे खाना खिलाया, लेकिन जब वह उसे पालतू बनाने जा रहा था तो वह उसपर झपट पड़ा और उसके सामने के कपड़ों को छोड़कर उसके सारे कपड़े फाड़ दिए, और उसका ऐसा हश्र कर दिया जो सबके लिए एक मनोरंजक नज़ारा बन गया। उसने फिर से किताब के लेखकों की जाँच की, लेकिन मामला समझ नहीं पाया। वह उसी नस्ल का कुत्ता था जिसके बारे में किताबों में बताया गया था, लेकिन उसने बड़े अलग तरीके से व्यवहार किया। यह लड़का कुछ भी करता था तो मुसीबत में फँस जाता था। वही चीज़ें जिनके लिए किताबों वाले लड़कों को ईनाम मिलता था, उसके लिए सबसे नुकसानदेह चीज़ें बन जाती थीं।

एक बार, वह रविवारी स्कूल जा रहा था, उसने देखा कि कुछ बुरे लड़के एक नाव में सवारी का मज़ा लूटने की तैयारी कर रहे हैं। वह आतंक से भर गया, क्योंकि अपने अध्ययन से वह जानता था कि रविवार के दिन नदी की सैर करने वाले सभी लड़के निरपवाद रूप से डूब जाते हैं। इसलिए वह एक बेड़े पर उन्हें चेतावनी देने के लिए दौड़ पड़ा लेकिन एक लट्ठा उसके साथ मुड़ा और वह नदी में गिर गया। एक आदमी ने काफ़ी जल्दी उसे बाहर निकाल लिया, और डॉक्टर ने उसका पानी बाहर निकाल कर उसके फेंफड़ों में नयी जान भरी, लेकिन उसे ठण्ड लग गयी और वह नौ सप्ताह तक बिस्तर पर बीमार पड़ा रहा। लेकिन सबसे बेतुकी बात यह थी कि नाव वाले बुरे लड़कों ने सारे दिन मौज की और फिर आश्चर्यजनक रूप से, घर ज़िन्दा और स्वस्थ पहुँचे। जैकब ब्लिवेंस ने कहा कि ऐसी कोई चीज़ तो किताबों में नहीं है। वह एकदम अचम्भित था।

जब वह ठीक हुआ तो वह थोड़ा हतोत्साहित था, लेकिन फिर भी उसने किसी भी तरह प्रयास जारी रखने का संकल्प लिया। वह जानता था कि अब तक उसका जो अनुभव रहा है वह रविवारी स्कूल की किताब में दर्ज होने के लायक नहीं है, लेकिन अभी वह अच्छे छोटे लड़कों को मिले जीवनकाल के अन्त तक नहीं पहुँचा है, और उसने उम्मीद की कि वह अगर वह अपना समय आने तक डटा रहता है तो शायद वह कोई दर्ज होने लायक काम कर ले। अगर हर चीज़ असफल हो जाती है तो अन्त में वह अपने मृत्युकालीन भाषण के आश्रय में जाएगा।

उसने किताबों को जाँचा और पाया कि अब समय आ गया है कि वह एक केबिन ब्वॉय के रूप में समुद्री जहाज पर जाए। वह एक जहाज के कप्तान से मिला और उसे अपनी अर्ज़ी दी, और जब उस कप्तान ने सिफ़ारिश के लिए पूछा तो उसने गर्व के साथ एक निबन्धिका निकाली और इन शब्दों की ओर इशारा किया, "जैकब ब्लिवेंस के लिए, उसके प्रेमपूर्ण शिक्षक की ओर से।" लेकिन कप्तान एक गँवारू, भद्दा आदमी था, और उसने कहा, "ओह, ये क्या बकवास है! यह तो कोई सबूत नहीं हुआ कि तुम तश्तरियाँ धुल सकते हो या कीचड़ भरी बाल्टी उठा सकते हो, और मेरे ख़याल से मुझे तुम्हारी ज़रूरत नहीं है।" यह जैकब के जीवन में हुई सबसे असाधारण घटनाओं में से एक थी। किसी निबन्धिका पर किसी शिक्षक की ओर से प्रशंसा कभी भी जहाज़ कप्तानों के कोमलतम भावों को प्रभावित करने में असफल नहीं होती थी, और वह सभी सम्मानजनक और लाभदायक कार्यालयों के दरवाज़े खोल देती थी—उसके द्वारा पढ़ी गई किसी भी किताब में ऐसी घटना नहीं थी। उसे बड़ी मुश्किल से अपनी आँखों पर विश्वास हुआ।

इस लड़के को इस मामले में हमेशा बड़ी उलझन होती थी। उसके लिए कभी भी कुछ भी उन किताबों के अनुसार नहीं होता था। अन्ततः एक दिन, जब वह चेतावनी देने के लिए बुरे लड़कों की खोज में निकला हुआ था, तो उसे एक पुराने लोहे के ढलाईखाने में पर्याप्त मात्रा में ऐसे लड़के मिले जो चौदह-पन्द्रह कुत्तों के साथ एक मज़ाक कर रहे थे, जिन्हें उन लड़कों ने एक लम्बी कतार में बाँध रखा था, और उन्हें नाइट्रो-ग्लिसरीन के डिब्बों से सजाने जा रहे थे। उसने सबसे आगे वाले कुत्ते को गर्दन से पकड़ा और अपनी धिक्कार भरी निगाह बदमाश टॉम जोंस पर

एक बुरे छोटे लड़के की कहानी

एक बार की बात है कि एक छोटा बुरा लड़का था जिसका नाम जिम था—हालाँकि आप पाएँगे कि आपके रविवारी स्कूल की किताब में बुरे लड़कों का नाम लगभग हमेशा ही जेम्स होता है। यह अजीब सी बात है मगर फिर भी यह सच है कि इस लड़के का नाम जिम ही था।

उसकी कोई बीमार माँ भी नहीं थी—जो धार्मिक हो और जिसे क्षय रोग हो, और जो कब्र में जाना चाहती हो और हमेशा के लिए चैन की नींद सो जाना चाहती हो, लेकिन जो अपने बेटे से बहुत प्यार करती हो और परेशान रहती हो कि उसके जाने के बाद यह दुनिया उसके बेटे के प्रति रूखी और निष्ठुर हो जाएगी। रविवारी पुस्तकों के अधिकांश बुरे लड़कों का नाम जेम्स होता है, और उनकी बीमार माँ होती है जो उन्हें "अब मैं स्वयं को अर्पित करता हूँ।" आदि कहने की शिक्षा देती हैं, जो उन्हें मीठी और उदास आवाज़ में लोरी सुनाती हैं और प्यार से चूमती हैं, और फिर बिस्तर के पास बैठकर रोती हैं। लेकिन इन जनाब की कहानी कुछ और ही थी। उसका नाम जिम था और उसकी माँ को कोई बीमारी नहीं थी—न तो क्षय रोग और न ही कोई और रोग, उल्टे वह कुछ हट्टी-कट्टी ही थी। और वह धार्मिक भी नहीं थी। इसके अतिरिक्त जिम को लेकर वह बहुत परेशान भी नहीं रहती थी। वह कहती थीं अगर जिम अपनी गर्दन भी तुड़ा बैठे तो कोई ज्यादा नुकसान नहीं होगा। वह हमेशा जिम को पिछवाड़े पर तमाचे लगाकर सुलाती थी और उसे प्यार से चूमती भी नहीं थी। उल्टे जब वह जाने वाली होती थी तो जिम के कानों पर घूँसे बरसाती थीं।

एक बार इस छोटे बुरे लड़के ने रसोई घर की चाबी चुराई और वहाँ चुपके से जाकर थोड़ा जैम खाया और फिर उस बर्तन को कोलतार से भर दिया, ताकि उसकी माँ को फ़र्क पता न चल सके। लेकिन यह सब करते हुआ एक बार भी अचानक उसके दिल में कोई भयानक सा अहसास नहीं हुआ, और उसे ऐसा भी नहीं लगा कि कोई चीज़ उससे फुसाफुसाकर कह रही है कि, "क्या अपनी माँ की आज्ञा का पालन न करना सही है? क्या यह पाप नहीं है? ऐसे लड़के कहाँ जाते हैं जो अपनी अच्छी दयालू माँ के जैम को सरपेट जाते हैं?" और फिर उसने अकेले में अपने घुटनों पर गिरकर फिर कभी बदमाशी न करने की कसम भी नहीं खाई, और हल्के और प्रसन्न हृदय के साथ उठकर अपनी माँ को सबकुछ बताने भी नहीं गया और न ही उसने माँ से माफ़ी माँगी और उसकी माँ ने आँखों में गर्व और आभार के आँसू लिए उसे आशीर्वाद भी नहीं दिया। जी नहीं, ऐसा कुछ नहीं हुआ! यह तो किताबों के दूसरे बुरे लड़कों के साथ होता है। लेकिन बहुत ताज्जुब की बात है कि जिम के साथ यह सब बिल्कुल अलग तरीके से हुआ। उसने जैम खाया और अपने पापी और बेहूदे अन्दाज़ में कहा कि यह बहादुरी का काम था; फिर उसने उस बर्तन में कोलतार भी रखा और कहा कि यह भी साहसिक काम है, और फिर वह हँसा और उसने सोचा कि जब उस बुढ़िया को इसके बारे में पता चलेगा तो "वह उठेगी और चिल्लाएगी"; जब उसे पता चला तो जिम ने इसके बारे में कुछ भी पता होने से साफ़ इंकार कर दिया, और उसकी माँ ने उसकी बुरी तरह पिटाई की और रोने का काम उसने खुद ही कर लिया। इस लड़के की हर बात अजीब थी—किताबों के बुरे जेम्सों के साथ जो भी होता था वह इसके साथ नहीं होता था।

डाली। लेकिन उसी समय नगर के एक वृद्ध मैकवेल्टर वहाँ आ पहुँचे जो गुस्से से भरे हुए थे। सभी बुरे लड़के भाग निकले, लेकिन जैकब ब्लिवेंस सोची-समझी मासूमियत के साथ उठा और उसने रविवारी स्कूल की किताबों के उन छोटे भाषणों में से एक की शुरुआत की जो हमेशा "ओह, सर!" से शुरू होते हैं, हालांकि कोई भी लड़का, चाहे अच्छा हो या बुरा, कभी भी "ओह, सर!" से बोलना नहीं शुरू करता। लेकिन उस वृद्ध ने बाकी बचा भाषण सुनने का इन्तज़ार नहीं किया। उसने जैकब ब्लिवेंस को कान से पकड़कर घुमा दिया और उसके पिछवाड़े पर एक जोरदार चाँटा मारा। तत्काल ही वह अच्छा छोटा लड़का गोली की तरह निकला और छत फाड़कर सूरज की ओर उड़ चला, और उन पन्द्रह कुत्तों के टुकड़े उसके पीछे किसी पतंग की पूँछ की तरह लहराते निकल गए। और उस बूढ़े और उसे पुराने लोहे के ढलाईखाने का कोई नामोनिशान धरती पर नहीं बचा। जहाँ तक छोटे जैकब ब्लिवेंस का सवाल है, उसे अपनी तमाम मुश्किलों के बावजूद उस समय तक मरते समय वाला भाषण देने का मौका नहीं मिला, जब तक कि उसने पक्षियों को यह भाषण नहीं दिया। क्योंकि, हालाँकि उसका ज्यादा हिस्सा तो ठीक-ठाक तरीके से एक बगल के कस्बे में एक पेड़ के ऊपर आ गिरा, लेकिन उसका बाकी का हिस्सा चार कस्बों के इर्द-गिर्द बँट गया, और इसीलिए यह जानने के लिए कि वह ज़िन्दा है या मर गया और ऐसा कैसे हुआ, उन्हें पाँच जाँचें करनी पड़ीं। आपने कभी किसी लड़के को इतना बिखरा हुआ नहीं देखा होगा।*

इस प्रकार वह अच्छा छोटा लड़का मारा गया जिसने अपने बूते की हर चीज़ की, लेकिन कुछ भी किताबों के अनुसार नहीं हुआ। हर लड़का जिसने उसके जैसे काम किए वह समृद्ध हुआ, बस वही नहीं हो पाया। इस लड़के का मामला वाकई विलक्षण है। शायद इसका तुक कभी कोई नहीं समझ पाएगा।

(*फुटनोट : यह ग्लिसरीन तबाही का ब्योरा एक उड़ते अखबारी आइटम से उधार लिया गया है, जिसके लेखक का नाम पता चलने पर मैं आपको बता दूँगा। – (मा.ट.))

अनुवाद : अभिनव

एक बार वह किसान एकॉर्न के सेब के पेड़ पर सेब चुराने के लिए चढ़ा, और उसकी टाँग नहीं टूटी, और न ही पेड़ से गिरकर उसका हाथ टूटा, और फिर किसान के विशाल कुत्ते ने उसे नोचा-खसोटा भी नहीं, फिर वह कई सप्ताह तक बीमार और कमज़ोर सा बिस्तर पर पड़ा रहकर पछताया नहीं और न ही वह इन सब के बाद अच्छा बन गया। ओह! नहीं; उसने जी भर कर सेब चुराया और फिर सही सलामत नीचे उतर आया; और कुत्ते के लिए भी वह पहले से ही तैयार था, और जब वह उसे नोचने आया तो उसने ईंट खींचकर मारी और उसे गिरा दिया। यह बहुत ही अजीब बात थी—उन नरम छोटी चिकनी जिल्द वाली किताबों में ऐसा कुछ कभी नहीं होता, जिनमें लम्बे काले कोट, सुनहरी कढ़ाई वाली टोपी और छोटी पतलून पहने आदमियों और कमर पर हाथ रखे और बिना किसी छल्ले वाली औरतों की तस्वीरें होती हैं। किसी भी रविवारी स्कूल की किताब में ऐसा कुछ नहीं होता।

एक बार उसने अपने अध्यापक का छोटा चाकू चुरा लिया, और जब उसे पकड़े जाने का डर सताने लगा तो उसने वह चाकू बेचारी विधवा विल्सन के बेटे जॉर्ज विल्सन की टोपी के नीचे खिसका दिया। जॉर्ज विल्सन गाँव का नैतिक और अच्छा लड़का था जो हमेशा माँ का कहना मानता था, और कभी भी असत्य वचन नहीं कहता था, और जो अपने पाठों को बड़े चाव से पढ़ता था, और जिसे रविवारी स्कूल से गहरा प्यार था। और जब चाकू उसकी टोपी से गिरा तो बेचारे जॉर्ज ने अपना सिर झुका लिया और शर्म से लाल हो गया मानो उसने वाकई अपराध किया हो, और दुखी अध्यापक ने उसके ऊपर चोरी का इल्ज़ाम लगा दिया, और जब वह उसके काँपते कंधों पर बेंत बरसाने जा रहा था, तभी कोई सफ़ेद बालों वाला अप्रत्याशित शान्तिदूत अचानक प्रकट नहीं हुआ, और पूरे अन्दाज़ और अदा के साथ यह नहीं बोला, "इस नेक लड़के को छोड़ दो—वह खड़ा है दुबका हुआ अपराधी! मध्यावकाश के दौरान मैं स्कूल के दरवाज़े के पास से गुज़र रहा था, और अपने आपको अदृश्य कर मैंने यह अपराध होते स्वयं देखा था!" और फिर जिम को कोड़े भी नहीं पड़े, और फिर माननीय शान्तिदूत ने आँखों में आँसू भरे स्कूल को कोई उपदेश पढ़कर नहीं सुनाया और जॉर्ज को हाथ से पकड़कर यह नहीं कहा कि ऐसे लड़के को प्रतिष्ठित करना ज़रूरी है। न ही उस शान्तिदूत ने उसे अपने साथ आकर अपना घर बनाने और कार्यालय साफ करने, आग जलाने, और सन्देशवाहक बनने, लकड़ी काटने, कानून का अध्ययन करने, और घरेलू काम करने में उसकी पत्नी की मदद करने, और बाकी बचे समय में खेलने, और महीने में चालीस सेण्ट प्राप्त करने को नहीं कहा। जी नहीं; ऐसा किताबों में हो सकता था, लेकिन जिम के साथ ऐसा कुछ नहीं हुआ। बीच में टाँग अड़ाने वाले किसी शान्तिदूत ने बीच में आकर परेशानी नहीं पैदा की, और इसलिए आदर्श लड़के जॉर्ज की अच्छी तरह धुलाई हुई, और जिम को इससे काफ़ी खुशी हुई, क्योंकि आपको पता ही होगा कि जिम को नैतिक किस्म के लड़कों से नफ़रत थी। जिम ने कहा कि "ऐसे जनखे उफर पड़ें।" इतनी घटिया भाषा थी इस बुरे, उपेक्षित लड़के की।

लेकिन जिम के साथ सबसे अजीब घटना तब हुई जब वह रविवार को नाव पर घूमने गया और डूबा नहीं, और दूसरी बार जब वह रविवार को मछली पकड़ रहा था तो वह तूफ़ान में फँस गया लेकिन उसपर बिजली नहीं गिरी। ऐसा क्यों है कि आपका ऐसी किसी घटना से साबका नहीं पड़ता, भले ही आप आज से अगले क्रिसमस तक की सभी रविवारी स्कूल की पुस्तकों में देख लें, बार-बार देख लें। ओह नहीं; आप पाएँगे कि सभी बुरे लड़के जो रविवार को नाव पर घूमने जाते हैं वे निरपवाद रूप से डूब जाते हैं; और वे सभी बुरे लड़के जो रविवार को मछली मारने जाते हैं और तूफ़ान में फँस जाते हैं उनपर बिजली ज़रूर गिरती है। रविवार के दिन वे नावें निरपवाद रूप से ख़राब हो जाती हैं जिनपर बुरे लड़के सवार होते हैं, और जब ये बुरे लड़के रविवार को मछली पकड़ने जाते हैं तो निश्चित रूप से तूफ़ान में फँस जाते हैं। यह कम्बख़्त जिम हमेशा कैसे बच निकलता था यह अभी भी मेरे लिए एक रहस्य है।

इस जिम की ज़िन्दगी मज़ेदार थी—ऐसा ही रहा होगा। उसे कोई भी चीज़ चोट नहीं पहुँचा सकती थी। उसने पशुशाला में खड़े हाथी को एक चुटकी तम्बाकू तक सुंघा दी और फिर भी हाथी ने उसके सिर पर अपनी सूँड़ से चोट नहीं की। उसने पिपरमिण्ट के सार के लिए कपबोर्ड में खोजबीन भी की और उसने कोई गलती नहीं की और ऐक्वा फोर्टिस नहीं पी लिया। वह अपने पिता की बन्दूक चुराकर रविवार की छुट्टी के दिन शिकार पर गया और उसने तीन-चार उंगलियाँ नहीं उड़ा लीं। जब उसने गुस्से में अपनी बहन की कनपटी पर घूँसा मारा तो वह गर्मी के लम्बे दिनों में दर्द में तड़पती नहीं रही, और फिर अपने होंठों पर माफ़ी के वे शब्द लिए मरी नहीं, जिससे उसके टूटे हुए दिल की तकलीफ़ को दोगुना हो जाए। नहीं; उसने इस दर्द से निपटने में कामयाबी हासिल की। अन्त में वह भागकर समुद्र के किनारे चला गया, और फिर वापस नहीं आया और अपने आपको इस संसार में दुखी और अकेला पाया, क्योंकि उसके प्यारे परिजन अब चर्च के कब्रिस्तान में आराम कर रहे हैं, और खुशियों से भरा उसके बचपन का घर अब टूट-फूटकर नष्ट हो चुका है। अरे नहीं!; वह एक पाइपर की तरह नशे में धुत घर वापस आया, और तुरन्त हवालात पहुँच गया।

वह बड़ा हुआ और उसने शादी की और एक विशाल परिवार बनाया, और फिर एक रात एक कुल्हाड़े से उन सबका भेजा फाड़ डाला, और बेईमानी और बदमाशी की सभी तरकीबें आजमा कर अमीर हो गया; और अब वह अपने गाँव का नरक-योग्य, सबसे बदमाश और नीच व्यक्ति है, और हर जगह उसका सम्मान होता है और वह विधान सभा का सदस्य है।

तो आपने देखा कि किसी भी रविवारी स्कूल की किताब में कोई भी ऐसा बुरा जेम्स नहीं था जिसे आकर्षक जीवन वाले इस जिम की तरह किस्मत का वरदान प्राप्त हो।

अनुवाद : लता

चाल-चेहरा-चरित्र पर कुछ चिन्तन-चर्वण

• फटक चन्द गिरधारी

संजय लीला भंसाली की फिल्म 'देवदास' के चुन्नी बाबू की तो याद होगी ही आपको। हमेशा अनुप्रास अलंकार में बोला करते थे। वास्तव में कहीं मिल जाते तो भाजपा वाले हाथ पकड़कर भर्ती कर लेते। अगले चुनाव में यदि टिकट नहीं मिलता तो कम से कम स्टार प्रचारक तो ज़रूर होते।

अनुप्रास अलंकार से संघी राजनीति का अन्तर्सम्बन्ध समाज विज्ञान, मनोविज्ञान और साहित्य—तीनों ही क्षेत्रों में गहन-गम्भीर शोध का एक मौलिक विषय हो सकता है। हमारे शहर में कुछ वर्षों पहले संघ का एक चिन्तन-शिविर लगा था, जिसमें भाजपा के चाल-चेहरा-चरित्र पर काफी चिन्तन-चर्वण हुआ था। तब से चलन कुछ ऐसा चला कि संघ परिवार के सभी चिल्लर चाल-चेहरा-चरित्र का चरखा कातते रहते थे। मगर चिन्तन की चक्की क्या चोकर पीसती जब धानी में डालने वाले अनाज में ही घुन लग गया हो! है न "च" से चुन्नी बाबू!

(आगे अपनी बात लिखते हुए हम भी देखेंगे कि हम संघियों की तरह अनुप्रास अलंकार का प्रयोग करते हुए अपनी बात कह पाते हैं या नहीं! इसके लिए चाल-चेहरा-चरित्र वाले 'च' अक्षर को ही चुनना ठीक रहेगा)

गुज़रा साल संघ परिवार पर कठिन गुज़रा। आडवाणी अपनी जन्मभूमि की यात्रा के दौरान मज़ार पर क्या गये, उनकी चाल ही कुछ बदली-बदली सी लगी संघ को। देश ने भाजपा का एक चेहरा कमीशनखोर सांसदों के रूप में चैनल वालों के स्टिंग ऑपरेशन की सीडी में देखा। और संजय जोशी जैसे चतुर-सुजान, विश्वस्त संघी का जो चरित्र देश भर में एक सीडी से उजागर किया, उसे तमाम खण्डनों के बावजूद देश की जनता ने संघी नैतिकता के एक प्रतिनिधि उदाहरण के रूप में देखा और सड़क के शोहदों ने चटखारे लिए। अन्दर के विवादों ने भी सड़क पर आकर शोभा में चार चाँद लगा दिये। हालात ऐसे रहे कि पार्टी के जो चुगद, चुक्कड़ और चिल्लर चूँ तक नहीं करते थे, वे अब चिंग्घाड़ रहे थे। नीति-निर्मातागण चंचल-चित्त हो उठे। चिन्तन शिविरों में चिन्ता का घटाटोप छा गया और जैसा कि दास कवि कबीर पहले ही कह गये थे, चतुराई घटने लगी। अब हालत यह है कि पुरानी चालें चुक गई सी लगती हैं और भाजपा का राजनीतिक रथ लड़िया की तरह चरमराते हुए एक चौराहे पर जा पहुँचा है।

(बस! अनुप्रास अलंकार का प्रयोग तो इस टिप्पणी को चूँ-चूँ का मुरब्बा बना देगा। क्या चूतियापा है कि हम भी चपड़कनातियों और चपण्डूकों जैसी हरकत किये जा रहे थे!)

दरअसल समस्या यह है कि हिन्दुत्व की फासीवादी राजनीति को साम्राज्यवादी और देशी पूँजीवादी शासक ज़ंजीर से बँधे शिकारी कुत्ते की तरह इस्तेमाल करना चाहते हैं, उधर कुत्ता दैवी अन्तःप्रेरणा के वशीभूत ज़ंजीर छुड़ाकर स्वतंत्र होना चाहता है। वह हिटलर राज के सपने देखता है, जो आज न तो सम्भव है, न ही पूँजीवाद की ज़रूरत। अन्तर्द्वन्द्व का एक मूल कारण यह भी है कि संघ की राह पुराने धर्मांध किस्म के फासीवाद की है, जबकि भाजपा की नयी पीढ़ी को थोड़े मॉडर्न किस्म का फासीवाद चाहिए। दोनों में समन्वय की कोशिशें जारी हैं। राम मन्दिर का पत्ता फिर से खेलने के विकल्प को भी तोला जा रहा है और तमाम पतित समाजवादियों और क्षेत्रीय बुर्जुआ दलों (जो एक दिन कांग्रेस-विरोध की राजनीति करते हैं तो अगले दिन 'सेकुलर-सेकुलर' खेलने लगते हैं) के साथ मोर्चे की राजनीति का अभ्यास भी जारी है। भाजपा की समस्या यह है कि पूँजीपतियों को उदारीकरण-निजीकरण की डगर पर रथ हाँकने वाले सबसे कुशल सारथी फिलहाल मनमोहन-मोण्टेक-चिदम्बरम लग रहे हैं और चुनावी वामपंथियों की सेफ़्टी वाल्व भूमिका भी खूब भा रही है। दूसरी समस्या यह भी है कि समय आने पर जनवाद का रामनामी दुपट्टा उतार फेंकने के लिए जब हर पूँजीवादी दल तैयार है तो संघी राजनीति का बाज़ार भाव मालिकों की नज़र में यूँ भी कम हो जाता है। फिर भी संघ परिवार को पुनरुत्थान की आस है। उसे आस है कूपमण्डूकता के पुराने सांस्कृतिक दलदल से, उसे आस है विकल्पहीन, अलगावग्रस्त, पराजितमना, निराश, पीले बीमार चेहरे वाले करोड़ों मध्यवर्गीय युवाओं से और लम्पट सर्वहाराओं से, उसे आस है रुग्ण-वृद्ध पूँजीवाद की उस ज़मीन से जो फासिस्ट तत्वों को स्वतःस्फूर्त गति से पैदा करती रहती है।

जैसा कि प्रेमचन्द ने काफ़ी पहले ही कह दिया था, साम्प्रदायिकता प्रायः संस्कृति का मुखौटा पहनकर आती है, लेकिन भारतीय संस्कृति के बारे में भाजपाइयों की समझ लालबुझक्कड़ों जैसी ही होती है। सच पूछें तो रामकथा से भी वे वाल्मीकि या तुलसी के माध्यम से नहीं बल्कि पण्डित राधेश्याम कथावाचक के जरिये परिचित होते हैं। नाटक के नाम पर वे बस रामलीला से प्यार करते हैं और रामलीला के ही भाँति-भाँति के कुत्सित रूपों के तौर पर बम्बइया सिनेमा को, और उसके अभिनेताओं को, बहुत पसन्द करते हैं। आश्चर्य नहीं कि भाजपा ने अपनी पच्चीसवीं सालगिरह का आयोजन मुम्बई में किया। वहाँ अटल बिहारी वाजपेयी ने आडवाणी को राम, प्रमोद महाजन को

(पेज 44 पर जारी)

भगतसिंह की वैचारिक विरासत

(पेज 15 से जारी)

के अन्त में विश्वासपूर्वक यह घोषणा की गयी है कि, "निकट भविष्य में यह युद्ध अन्तिम रूप में लड़ा जायेगा और तब यह निर्णायक युद्ध होगा। साम्राज्यवाद एवं पूँजीवाद कुछ समय के मेहमान हैं।" यहाँ भगतसिंह की उस प्रखर इतिहास दृष्टि से हमारा साक्षात्कार होता है जो राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष को जन-मुक्ति-संघर्ष की इतिहास-यात्रा के दौरान बीच का एक पड़ाव मात्र मानती थी और साम्राज्यवाद-पूँजीवाद के विरुद्ध संघर्ष को ही अन्तिम निर्णायक संघर्ष मानती थी। भगतसिंह ने कई स्थानों पर इस बात पर बल दिया है कि इस निर्णायक विश्व-ऐतिहासिक महासमर का नेतृत्व सर्वहारा वर्ग ही कर सकता है और पूँजीवाद का एकमात्र विकल्प समाजवाद ही हो सकता है। इस मायने में भगतसिंह और एच.एस.आर.ए. के नेतृत्व के युवा क्रान्तिकारी न केवल अपने पूर्ववर्ती सशस्त्र क्रान्तिकारियों से बल्कि अपने समकालीनों से भी काफ़ी आगे थे। आज जब विश्व स्तर पर पूँजी और श्रम की शक्तियाँ एक नये, निर्णायक ऐतिहासिक युद्ध के लिए आमने-सामने लामबन्द हो रही हैं तो भारत के युवाओं और मेहनतकशों के लिए साम्राज्यवाद और पूँजीवाद के भविष्य के बारे में भगतसिंह के इस आकलन और भविष्यवाणी का विशेष महत्व हो जाता है।

भगतसिंह, भगवती चरण वोहरा और एच.एस.आर.ए. के अन्य अग्रणी क्रान्तिकारियों का दृष्टिकोण भारतीय पूँजीपति वर्ग के बारे में भी एकदम स्पष्ट था। कांग्रेस के नेतृत्व को वे इन्हीं पूँजीपतियों-व्यापारियों का प्रतिनिधि मानते थे और उनकी यह स्पष्ट धारणा थी कि राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्व यदि कांग्रेस के हाथों में रहा तो उसका अन्त एक समझौते के रूप में ही होगा। और इसीलिए वह यह स्पष्ट सन्देश देते हैं कि क्रान्तिकारियों के लिए आज़ादी का मतलब सत्ता पर बहुसंख्यक मेहनतक़श जनता का क़ाबिज होना है, न कि लार्ड रीडिंग और लार्ड इर्विन की जगह पुरुषोत्तम दास, ठाकुरदास का अथवा गोरे अंग्रेज़ों की जगह काले अंग्रेज़ों का सत्तासीन हो जाना। उनकी स्पष्ट घोषणा थी कि यदि देशी शोषक भी किसानों-मज़दूरों का ख़ून चूसते रहेंगे तो हमारी लड़ाई जारी रहेगी। यहाँ ग़ौरतलब यह भी है कि गांधी और कांग्रेस की राजनीति का विरोध करते हुए भगतसिंह की पहुँच और पद्धति नितान्त द्वन्द्वात्मक है। वह मानते हैं कि व्यापक जनता की राष्ट्रीय अकांक्षाओं को कांग्रेस के नेतृत्व वाला जनान्दोलन एक मंच दे रहा है। वे इसकी जनकार्रवाइयों के कायल हैं पर यह भी मानते हैं कि कांग्रेसी नेतृत्व की राजनीति जनविरोधी है और इसकी जनकार्रवाइयों का उद्देश्य जनता की मुक्ति नहीं बल्कि मुट्ठीभर पूँजीपतियों और अभिजातों को सत्तारूढ़ बनाना है तथा यह भी कि कांग्रेस साम्राज्यवाद से निर्णायक विच्छेद नहीं कर सकती। गांधी और गांधीवाद का ऐतिहासिक द्वन्द्वात्मक विश्लेषण करते हुए वह लिखते हैं, "गांधी एक दयालु मानवतावादी व्यक्ति हैं। लेकिन ऐसी दयालुता से सामाजिक तबदीली नहीं आती, उसके लिए वैज्ञानिक और गतिशील सामाजिक शक्ति की ज़रूरत है।" 2 फरवरी, 1931 के अपने लम्बे लेख में उन्होंने फिर लिखा, "हमें कांग्रेस आन्दोलन की सम्भावनाओं, पराजयों व उपलब्धियों सम्बन्धी किसी किस्म का भ्रम नहीं होना चाहिये। आज के इस आन्दोलन को गांधीवाद कहना ठीक है... इसका तरीका अनूठा है, लेकिन इसके विचार बेचारे लोगों के किसी काम के नहीं है। गांधीवाद साबरमती के सन्त को कोई स्थायी शिष्य नहीं दे पायेगा।" लेकिन साथ ही व्यापक जनता को लामबन्द कर लेने में गांधी की सफलता का वे वस्तुपरक मूल्यांकन भी करते हैं, "इस तरह गांधीवाद अपने भाग्यवादी मत के बावजूद क्रान्तिकारी विचारों के क़रीब पहुँचने की कोशिश करता है, क्योंकि वह जनकार्रवाई पर निर्भर करता है, चाहे यह कार्रवाई जनता के लिए नहीं है।"

एक ओर जहाँ एच.एस.आर.ए. ने जनता को जगाने और अपने उद्देश्यों के प्रचार के लिए कुछ व्यक्तिगत आतंक की कार्रवाइयों को पूर्ववर्ती क्रान्तिकारी संगठनों की ही भाँति अंजाम दिया, वहीं मज़दूर क्रान्तियों और जनसंघर्षों के इतिहास और क्रान्तिकारी आन्दोलनों के अनुभवों के समाहार के आधार पर भगतसिंह और उनके साथी ज्यादा से ज्यादा इस निष्कर्ष पर पहुँचते जा रहे थे कि क्रान्ति अपनी निर्णायक मंज़िल में अनिवार्यतः सशस्त्र और हिंसात्मक होगी, लेकिन मज़दूरों-किसानों-छात्रों-युवाओं के खुले जनसंगठन बनाये बिना और व्यापक जनान्दोलनों के बिना क्रान्ति की तैयारियों को निर्णायक मंज़िल तक पहुँचाया ही नहीं जा सकता। इस सोच की शुरुआती अभिव्यक्ति हमें 'नौजवान भारत सभा' के गठन में देखने को मिलती है और जेल जीवन के अन्तिम वर्ष तक मार्क्सवाद-लेनिनवाद के गहन अध्ययन (जिसका प्रमाण भगतसिंह की जेल नोटबुक के नोट्स हैं) के बाद भगतसिंह इस सोच पर एकदम दृढ़ हो चुके थे। 19 अक्टूबर 1929 को पंजाब छात्र संघ, लाहौर के दूसरे अधिवेशन को भेजे गये अपने सन्देश में भगतसिंह ने लिखा था : "इस समय हम नौजवानों से यह नहीं कह सकते कि वे बम और पिस्तौल उठायें। आज विद्यार्थियों के सामने इससे भी महत्वपूर्ण कार्य है। . ..नौजवानों को क्रान्ति का यह सन्देश देश के कोने-कोने तक पहुँचाना है, फैक्टरी-कारख़ानों के क्षेत्रों में, गन्दी बस्तियों और गाँवों की जर्जर झोपड़ियों में रहने वाले करोड़ों लोगों में इस क्रान्ति की अलख जगानी है जिससे आज़ादी आयेगी और तब एक मनुष्य द्वारा दूसरे मनुष्य का शोषण असम्भव हो जायेगा।" फरवरी, 1931 के अपने ऐतिहासिक मसविदा दस्तावेज़ में भगतसिंह ने स्पष्ट कहा था :

"आतंकवाद हमारे समाज में क्रान्तिकारी चिन्तन की पकड़ के अभाव की अभिव्यक्ति है; या एक पछतावा। इसी तरह यह अपनी असफलता का स्वीकार भी है।... आतंकवाद अधिक से अधिक साम्राज्यवादी ताकत को समझौते के लिए मजबूर कर सकता है। ऐसे समझौते, हमारे उद्देश्य—पूर्ण आज़ादी से हमेशा ही कहीं दूर रहेंगे। इस प्रकार आतंकवाद, एक समझौता, सुधारों की एक किस्त निचोड़कर निकाल सकता है और इसे ही हासिल करने के लिए गांधीवाद ज़ोर लगा रहा है। वह चाहता है कि दिल्ली का शासन गोरे हाथों से भूरे हाथों में आ जाये। ये लोगों के जीवन से दूर हैं और इनके गद्दी पर बैठते ही ज़ालिम बन जाने की बहुत सम्भावनाएँ हैं।" जाहिर है कि अपनी विचार-यात्रा के अन्तिम पड़ाव तक पहुँचते-पहुँचते भगतसिंह कांग्रेस और गांधीवाद के असली चरित्र की पहचान करने के साथ-साथ क्रान्तिकारी आतंकवाद की सीमाओं को भी समझने लगे थे और जैसा कि फरवरी 1931 के मसविदा दस्तावेज़ से स्पष्ट हो जाता है, वह महान मस्तिष्क अपने अवसान की पूर्वबेला में एक जनक्रान्ति की तैयारी और पूर्वाधार के प्रश्नों से गहन रूप से जूझ रहा था।

भगतसिंह राष्ट्रीय आन्दोलन में पूँजीपति वर्ग की भागीदारी को जहाँ ढुलमुलपन से भरा हुआ और अन्ततः समझौते की परिणति तक पहुँचने वाला मानते थे, वहीं अध्ययन और अनुभव ने उन्हें मज़दूर-किसान संश्रय विषयक इस लेनिनवादी निष्पत्ति के निकट पहुँचा दिया था कि राष्ट्रीय अथवा समाजवादी क्रान्तियों में मज़दूर वर्ग का नेतृत्व और उसके निकटतम संश्रयकारी के रूप में किसानों की मौजूदगी ही उनकी सफलता की गारण्टी हो सकती है। उन्होंने यह स्पष्ट लिखा था, "क्रान्ति राष्ट्रीय हो या समाजवादी, जिन शक्तियों पर हम निर्भर हो सकते हैं, वे हैं किसान और मज़दूर।"

अपने उपरोक्त ऐतिहासिक दस्तावेज़ में भगतसिंह ने युवा राजनीतिक कार्यकर्ताओं को सलाह दी है कि वे मार्क्स और लेनिन का अध्ययन करें, उनकी शिक्षा को अपना मार्गदर्शक बनायें, जनता के बीच जायें, मज़दूरों-किसानों और शिक्षित मध्यवर्गीय नौजवानों के बीच काम करें, उन्हें राजनीतिक दृष्टि से शिक्षित करें, उनमें वर्ग-चेतना उत्पन्न करें, उन्हें संगठित करें, आदि। महत्त्वपूर्ण बात है कि इस दस्तावेज़ में एक कम्युनिस्ट पार्टी के निर्माण की ज़रूरत पर बल दिया है जो मुख्यतः पेशेवर क्रान्तिकारियों—ऐसे पूर्णकालिक कार्यकर्ताओं पर निर्भर हो जिनकी क्रान्ति के सिवा न कोई दूसरी आकांक्षा हो, न ही जीवन का कोई दूसरा लक्ष्य।

भगतसिंह और उनके साथी राष्ट्रीय जनवादी क्रान्ति को समाजवाद के लिए संघर्ष के लक्ष्य की दिशा में यात्रा के दौरान बीच की एक मंज़िल मानते थे, वे सर्वहारा क्रान्ति के पक्षधर थे और उपनिवेशवाद के विरुद्ध संघर्ष को साम्राज्यवाद की विश्व-व्यवस्था के विरुद्ध संघर्ष का एक अंग मानते थे। वे राष्ट्रवादी क्रान्तिकारी मात्र न होकर उत्कट अन्तरराष्ट्रीयतावादी थे। भाषाई-जातिगत-धार्मिक संकीर्णता से वे पूरी तरह से मुक्त थे तथा रहस्यवाद और भाग्यवाद की दिमाग़ी गुलामी से छुटकारा पा चुके थे। भगतसिंह की नास्तिकता एक सच्चे वैज्ञानिक भौतिकवादी की नास्तिकता थी।

इस पूरी चर्चा का उद्देश्य भगतसिंह के चिन्तन के उन पक्षों को रेखांकित करना है, जो आज के समय में भी हमारे लिए प्रासंगिक हैं। हम यह नहीं कहते कि भगतसिंह द्वारा सुझाया गया क्रान्ति का रास्ता आज हमारे लिए पूरी तरह से प्रासंगिक है। तबसे अब तक देश के उत्पादन-सम्बन्धों, सामाजिक-आर्थिक संरचना, राज्यसत्ता के चरित्र एवं कार्यप्रणाली तथा साम्राज्यवाद के चरित्र एवं कार्यप्रणाली में महत्वपूर्ण बदलाव आये हैं, लेकिन आज की क्रान्ति के युवा हरावलों के लिए भी भगतसिंह के चिन्तन के कुछ पक्ष नितान्त प्रासंगिक हैं। इन्हें यदि सूत्रवत बताना हो तो इस रूप में गिनाया जा सकता है : (1) भगतसिंह और उनके साथियों की निरन्तर विकासमान भौतिकवादी जीवनदृष्टि और द्वन्द्वात्मक विश्लेषण पद्धति (2) साम्राज्यवाद के विरुद्ध जारी विश्व-ऐतिहासिक युद्ध के प्रति उनका नज़रिया (3) राष्ट्रीय मुक्ति युद्ध को साम्राज्यवादी विश्व-व्यवस्था के विरुद्ध संघर्ष का अंग मानने तथा समाजवादी क्रान्ति की पूर्ववर्ती मंज़िल मानने का उनका नज़रिया (4) कांग्रेस और गांधी के वर्ग चरित्र का द्वन्द्वात्मक मूल्यांकन और कांग्रेसी नेतृत्व वाली राष्ट्रीय आन्दोलन की मुख्य धारा की तार्किक परिणति का प्रतिभाशाली पूर्वानुमान (5) क्रान्तिकारी आतंकवाद के विश्लेषण के बाद उससे आगे बढ़कर क्रान्तिकारी जनदिशा पर बल देना, मज़दूरों-किसानों को क्रान्ति की मुख्य शक्ति मानते हुए उन्हें संगठित करने पर बल देना तथा एक सर्वहारा क्रान्ति को अपरिहार्य बताना (6) एक क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट पार्टी की लेनिनवादी अवधारणा को स्वीकारना और उसके निर्माण को ज़रूरी बताना (7) धार्मिक-जातिगत-भाषाई कट्टरता का विरोध करना, आदि।

इन्हीं कारणों से हमारा मानना है कि इक्कीसवीं शताब्दी में भगतसिंह को याद करना और उनके विचारों को जन-जन तक पहुँचाने का उपक्रम एक विस्मृत क्रान्तिकारी परम्परा का पुनःस्मरण मात्र ही नहीं है। भगतसिंह का चिन्तन परम्परा और परिवर्तन के द्वन्द्व का जीवन्त रूप है और आज, जब नयी क्रान्तिकारी शक्तियों को एक बार फिर संगठित होकर साम्राज्यवाद और देशी पूँजीवाद के विरुद्ध संघर्ष की दिशा और मार्ग का संधान करना है, जब एक बार फिर नयी समाजवादी क्रान्ति की रणनीति और आम रणकौशल विकसित करने का कार्यभार हमारे सामने है तो भगतसिंह की विचार-प्रक्रिया और उसके निष्कर्षों से हमें कुछ बहुमूल्य चीज़ें सीखने को मिलेंगी।

परम्परा कभी भी उँगली पकड़कर भविष्य तक नहीं पहुँचाती। वह एक दिशा देती है, बशर्ते कि हम आलोचनात्मक विवेक के साथ इतिहास का अध्ययन करें और अपनी परम्परा की पहचान करें। प्राचीनकालीन लोकायत दर्शन, बौद्ध दर्शन और सांख्य आदि की भौतिकवादी चिन्तन परम्परा हमारी परम्परा है। मध्यकालीन निर्गुण भक्ति आन्दोलन की परम्परा हमारी परम्परा है। आधुनिक काल में राधामोहन गोकुल, राहुल सांकृत्यायन और भगतसिंह की विकासमान वैज्ञानिक भौतिकवादी चिन्तन-परम्परा भी हमारी परम्परा है। और यह परम्परा अत्यन्त समृद्ध है। हम तो

यहाँ मात्र कुछ सर्वाधिक आलोकमय शिखरों का नामोल्लेख कर रहे हैं। पूरी दुनिया के साथ ही, अपने देश की इस क्रान्तिकारी विरासत का पुनःस्मरण आज के नये सर्वहारा पुनर्जागरण और प्रबोधन का आवश्यक कार्यभार है। इतिहास कोई जड़वस्तु नहीं होती। जब भी भविष्य-संधान का नया कार्यभार सामने आता है, जब भी नये सिरे से मुक्ति-परियोजनाओं का निर्माण करना होता है तो एक बार फिर इतिहास का अन्वेषण करना होता है। भगतसिंह और उनके साथियों के सम्पूर्ण कृतित्व का अध्ययन इसीलिए आज उनके लिए बहुत ज़रूरी है जो जन मुक्ति की नयी परियोजना तैयार करने और उसे क्रियान्वित करने के लिए संकल्पबद्ध हैं।

●

इन पत्रों-दस्तावेज़ों का अध्ययन करते हुए एक बात का ध्यान रखना बेहद ज़रूरी है। इनका अध्ययन इनके कालक्रम को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिये। भगतसिंह को समय ने अपने विचारों को सुस्थिर-सुनिश्चित करने का समय ही नहीं दिया। उनका पूरा चिन्तन एक तूफ़ानी गति वाली विचार-यात्रा है, जिसमें क्रान्तिकारी जीवन के अनुभवों के समाहार तथा दर्शन, साहित्य, क्रान्तियों के इतिहास आदि के धुआँधार अध्ययन के बाद, लगातार, बहुत तेजी से परिवर्तन आते गये हैं। लगातार वह ज्यादा-से-ज्यादा वैज्ञानिक दृष्टि-सम्पन्नता की दिशा में आगे बढ़ते गये हैं, उनका चिन्तन ज्यादा से ज्यादा अन्तरविरोधमुक्त होता गया है तथा उनकी विश्लेषण पद्धति ज्यादा से ज्यादा द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी होती गयी है।

भगतसिंह ने अपना पहला लेख पंजाब की भाषा और लिपि की समस्या पर सत्रह वर्ष की अवस्था में लिखा। तब उनका क्रान्तिकारी जीवन शुरू हो चुका था और वह कानपुर में 'प्रताप' में काम कर रहे थे। 1928 में एच.एस.आर.ए. के गठन के समय तक उनकी और उनके साथियों की समाजवाद के प्रति रूमानी प्रतिबद्धता उत्पन्न हो चुकी थी और सशस्त्र कार्रवाइयों के साथ-साथ युवाओं के खुले जनसंगठन और जनान्दोलन को भी वे ज़रूरी मानने लगे थे। क्रान्तिकारी जीवन के अनुभवों, गहन अध्ययन तथा सोहनसिंह जोश और लाला छबील दास के साथ लगातार सम्पर्क-संवाद ने धीरे-धीरे वैज्ञानिक समाजवाद के प्रति उनकी समझदारी को और गहरा बनाने का काम किया। कानपुर-प्रवास के दौरान राधामोहन गोकुलजी और सत्यभक्त आदि के विचारों ने तथा वहाँ के मज़दूर आन्दोलन ने भी मध्यवर्गीय सशस्त्र क्रान्तिवाद को सर्वहारा क्रान्ति की समझ की दिशा में मोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। जेल में काफ़ी संघर्ष के बाद लिखने-पढ़ने की सुविधा भगतसिंह को सितम्बर 1929 को मिली। उसके बाद, मुकदमे के बयानों की तैयारियों, जेल के बाहर के साथियों से सम्पर्क-संवाद और लम्बी भूख-हड़ताल के अतिरिक्त भगतसिंह ने अपना सारा समय गहन अध्ययन और लेखन में ख़र्च किया। जेल नोटबुक के प्रकाश में आने के बाद यह स्पष्ट हो गया है कि इस अध्ययन का दायरा आश्चर्यजनक रूप से व्यापक था, लेकिन इसमें भी क्रान्तियों के इतिहास, महत्वपूर्ण मार्क्सवादी क्लासिक्स और दर्शन का उन्होंने सर्वाधिक गहन अध्ययन किया। नोटबुक के नोट्स बताते हैं कि यह अध्ययन कितना डूबकर किया गया था। ग़ौरतलब है कि 23 मार्च 1931 तक जारी गहन अध्ययन इस सिलसिले की अवधि मात्र डेढ़ वर्षों की ही थी। इस छोटे से समय में गहन अध्ययन के जरिए भगतसिंह ने जो वैचारिक परिपक्वता अर्जित की, वह किसी युगान्तरकारी महान ऐतिहासिक प्रतिभा के ही बूते की बात थी। मात्र 17 से 23 वर्ष की उम्र के बीच फैली यह अल्पावधि विचार-यात्रा इतिहास की एक मिसाल है। औपनिवेशिक भारत के पिछड़े सांस्कृतिक-शैक्षिक परिवेश की सीमाओं को देखते हुए, भगतसिंह की इस युगद्रष्टा प्रतिभा की तुलना यदि युवा लेनिन की प्रतिभा से की जाये तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। चमनलाल ने 'भगतसिंह के सम्पूर्ण दस्तावेज़' की प्रस्तावना में उनकी तुलना मात्र चौबीस वर्ष की आयु जीने वाले रूस के क्रान्तिकारी जनवादी चिन्तक दोब्रोल्यूबोव से ठीक ही की है।

अध्ययन और चिन्तन की इस अतिसंक्षिप्त, सघन-सान्द्र और तीव्र वेगवाही अवधि को देखते हुए यह स्वाभाविक ही है कि भगतसिंह के चिन्तन में प्रायः कुछ अन्तरविरोध और चिन्तन की हर अग्रवर्ती मंज़िल में पूर्ववर्ती मंज़िल की कुछ प्रभाव-छायाएँ देखने को मिलती हैं। इसलिए इन दस्तावेज़ों का अध्ययन करते समय चिन्तन की मुख्य दिशा, मूल निष्पत्तियों और विश्लेषण-पद्धति पर ध्यान देना सबसे ज़रूरी है। भगतसिंह को अपनी स्थापनाओं को सुव्यवस्थित और विस्तारित करने का अवसर नहीं मिला, लेकिन साम्राज्यवाद के बारे में, भारतीय पूँजीपति वर्ग और कांग्रेस के बारे में, सर्वहारा वर्ग की क्रान्तिकारी पार्टी के निर्माण की आवश्यकता के बारे में और क्रान्ति की तैयारी के बारे में उनके जो निष्कर्ष थे, उन्हें इतिहास ने सही सिद्ध किया। जीवन के अन्तिम काल में लिखे गये लेख 'मैं नास्तिक क्यों हूँ' (अक्टूबर 1930) और अन्तिम ऐतिहासिक दस्तावेज 'क्रान्तिकारी कार्यक्रम का मसविदा' (2 फ़रवरी 1931) में भगतसिंह का चिन्तन अपनी परिपक्वता के शिखर-बिन्दु पर पहुँचा हुआ दिखायी देता है।

एच.एस.आर.ए. के क्रान्तिकारियों के अब तक प्रकाशित कुल 105 दस्तावेज़ों में से 72 भगतसिंह का लेखन हैं और शेष 33 भगवतीचरण वोहरा, सुखदेव, बटुकेश्वर दत्त, महावीर सिंह आदि का लेखन है। इससे भी यह स्पष्ट है कि एक विचारक और सिद्धान्तकार के रूप में, अपने साथियों के बीच भगतसिंह की ही भूमिका नेतृत्वकारी थी। यूँ तो सुखदेव, बटुकेश्वर दत्त, शिव वर्मा, विजय कुमार सिन्हा आदि भी मेधावी और अध्ययनशील युवा थे, लेकिन चिन्तन के क्षेत्र में भगवतीचरण वोहरा भगतसिंह के सर्वाधिक क़रीबी थे। उल्लेखनीय है कि भगतसिंह से गहन विचार-विमर्श के बाद नौजवान भारत सभा और एच.एस.आर.ए. का घोषणापत्र भगवती चरण वोहरा ने ही तैयार किया था। वह भगतसिंह की विचार-यात्रा के अनन्य सहयात्री थे।

भगतसिंह और उनके साथियों की राजनीतिक-वैचारिक समझ 1917 की रूसी सर्वहारा क्रान्ति के प्रखर रक्तिम आलोक से आलोकित हुई थी। 'युगान्तर' और 'अनुशीलन' से लेकर 'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन तक के मध्यवर्गीय अराजकतावादी क्रान्तिकारी आन्दोलन के

विकासक्रम की गहराई से जाँच-पड़ताल करने, मज़दूरों-किसानों को संगठित करने की महत्ता को समझने और फिर वैज्ञानिक समाजवाद को स्वीकारने की मंज़िल तक पहुँचने के पीछे भगतसिंह और भगवतीचरण वोहरा की महान प्रतिभा का योगदान तो था ही, लेकिन साथ ही, इसके कुछ सुनिश्चित वस्तुगत ऐतिहासिक कारण भी थे। इस वैचारिक विकास के पीछे गदर पार्टी के निकट अतीत की भूमिका काफ़ी महत्वपूर्ण थी। गदर-पार्टी वह पहली क्रान्तिकारी पार्टी थी जिसमें किसानों और मज़दूरों की भूमिका और जनान्दोलनों की भूमिका को सशस्त्र क्रान्ति से जोड़ने की सोच मौजूद थी और जो एक जनवादी गणतंत्र की स्थापना की सुनिश्चित अवधारणा प्रस्तुत कर रही थी। यह अनायास नहीं था कि आगे चलकर गदर-पार्टी के अधिकांश क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट आन्दोलन में शामिल हो गये। गदर पार्टी के संस्थापक लाला हरदयाल की विश्लेषण पद्धति में काफ़ी हद तक जुझारू भौतिकवादी वर्ग-विश्लेषण के तत्त्व समाहित थे। भगतसिंह और उनके साथियों ने अजीतसिंह, लाला हरदयाल और कर्तारसिंह सराभा की क्रान्तिकारी जनवादी परम्परा को आगे विस्तार दिया और उसे मार्क्सवाद की मंज़िल तक उसी तरह आगे बढ़ाया जिस तरह रूस में प्लेखानोव और वेरा ज़ासूलिच आदि की पीढ़ी नरोदवाद की क्रान्तिकारी जनवादी विरासत से आगे बढ़कर मार्क्सवाद तक पहुँची। अन्तर सिर्फ़ यह था कि भगतसिंह, भगवतीचरण वोहरा आदि को अपने मार्क्सवादी चिन्तन को सुव्यवस्थित ढंग से आगे बढ़ाने और उसे अमल में लाने का अवसर ही नहीं मिला।

भगतसिंह की मार्क्सवाद तक की यात्रा एम.एन. राय और अन्य विलायतपलट भारतीय कम्युनिस्ट नेताओं से भिन्न थी। उन्होंने मार्क्सवादी क्लासिक्स का अध्ययन किया और इस प्रक्रिया में विकसित होती हुई दृष्टि से भारतीय समाज और राजनीति का मौलिक विश्लेषण करने की कोशिश की। यह कोशिश चाहे जितनी भी छोटी और अनगढ़ रही हो, पर इसकी मौलिकता और इसके विकास की तीव्र गति सर्वाधिक उल्लेखनीय थी। भगतसिंह और उनके साथियों ने भारत के प्रारम्भिक कम्युनिस्ट नेतृत्व की तरह सोवियत संघ और ब्रिटेन की कम्युनिस्ट पार्टियों तथा कम्युनिस्ट इण्टरनेशनल के दस्तावेजों में प्रस्तुत विश्लेषणों-निष्कर्षों को आधार बनाकर भारतीय परिस्थितियों को देखने और कार्यभार तय करने के बजाय स्वयं अपनी दृष्टि और अध्ययन के आधार पर ब्रिटिश उपनिवेशवाद, कांग्रेस, गांधी आदि के बारे में मूल्यांकन बनाये। अप्रोच की यह मौलिकता विशेष रूप से हमारे देश में उल्लेखनीय है जहाँ बड़ी पार्टियों और अन्तरराष्ट्रीय नेतृत्व का अन्धानुकरण लगातार एक गम्भीर बीमारी के रूप में मौजूद रहा है। इस मायने में भगतसिंह, भगवतीचरण वोहरा आदि की विकास-प्रक्रिया माओ त्से-तुङ और हो ची मिन्ह के अधिक निकट जान पड़ती है जिन्होंने अन्तरराष्ट्रीय नेतृत्व से सीखते हुए भी, अपने-अपने देशों की ठोस परिस्थितियों का स्वयं अध्ययन किया और क्रान्ति की रणनीति, आम रणकौशल और मार्ग का निर्धारण किया। ऐसा सोचने का वस्तुगत आधार है कि यदि भगतसिंह जीवित रहे होते और उन्हें अपनी सोच के आधार पर कम्युनिस्ट पार्टी बनाने या कम्युनिस्ट पार्टी में शामिल होकर उसे अपनी सोच के हिसाब से दिशा देने का अवसर मिला होता तो शायद इस देश के कम्युनिस्ट आन्दोलन का इतिहास, या शायद इस देश का ही इतिहास किसी और ढंग से लिखा जाता।

बहरहाल, आज ऐसा सोचने की एकमात्र प्रासंगिकता यही हो सकती है कि क्रान्तिकारी विचार और कर्म की उस अधूरी यात्रा को एक बार फिर आगे बढ़ाने और अंजाम तक पहुँचाने की बेचैनी से हर प्रगतिकामी भारतीय युवा के दिल को लबरेज़ कर दिया जाये। भगतसिंह के ही सन्देश को आधार बनाकर जन-जन तक इस सन्देश को पहुँचाना होगा कि यही साम्राज्यवाद और पूँजीवाद के विरुद्ध निर्णायक संघर्ष का वह ऐतिहासिक काल है जिसकी भविष्यवाणी भगतसिंह ने की थी। कांग्रेसी नेतृत्व ने राष्ट्रीय आन्दोलन को आधी सदी पहले एक ऐसे मुकाम तक पहुँचाया, जब पूँजीवादी शासन के रूप में हमें अधूरी, खण्डित और विकलांग आज़ादी मिली और तबसे लेकर आज तक इतिहास एक अँधेरी सुरंग का दुखदायी सफरनामा बनकर रह गया। अब एक बार फिर, जैसा कि भगतसिंह ने कहा था, हमें "क्रान्ति की तलवार विचारों की सान पर तेज़" करनी होगी और साम्राज्यवाद-पूँजीवाद विरोधी नयी समाजवादी क्रान्ति का सन्देश कल-कारख़ानों-झोपड़ियों तक, मेहनतकशों के अँधेरे संसार तक, हर जीवित हृदय तक लेकर जाना होगा। भगतसिंह का नाम आज इसी संकल्प का प्रतीक चिह्न है और उनका चिन्तन क्षितिज पर अनवरत जलती मशाल की तरह हमें प्रेरित कर रहा है और दिशा दिखला रहा है।

नया वर्ष
नयी उम्मीदों,
नयी तैयारियों,
नयी शुरुआतों के नाम
पराजय की घड़ी में भी
विजय के स्वप्नों के नाम,
लगातार लड़ते रहने की
ज़िद के नाम
संकल्पों के नाम
जीवन, संघर्ष और सृजन के नाम!

वियतनाम युद्ध के तीस बरस

(पेज 29 से जारी)

कि युद्ध मशीन नहीं जीतती। युद्ध मनुष्य जीतता है। वियतनामी जनता के पास जो चीज़ थी वह था उनका एक लक्ष्य के लिए संघर्ष। वियतनाम की जनता हो ची मिन्ह और कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में सिर्फ आज़ादी के लिए नहीं लड़ रही थी। बल्कि वह एक ऐसे समाज के लिए लड़ रही थी जो उनका अपना समाज होने वाला था। यही वजह थी कि इतनी मौतें, इतनी तबाही और बरबादी भी उसे तोड़ न सकी और अपने बाँस के हथियारों और साहस के बूते ही उन्होंने अमेरिका की मिट्टी पलीद कर दी।

इस युद्ध में अमेरिकी सैनिकों ने जो अत्याचार वियतनामी जनता पर किये उनका वर्णन करना किसी के लिए भी एक यातनादायी अनुभव हो सकता है। दुनिया भर में "जनतंत्र और मानवतावाद" के सबसे बड़े ठेकेदार ने जिस कदर मानवाधिकार और जनवादी मूल्यों की चिन्दी-चिन्दी वियतनाम में की उसकी कोई और मिसाल देखने को नहीं मिलती। लेकिन मानवता के ख़िलाफ़ किये गये इन अपराधों का मूल्य भी अमेरिका को चुकाना पड़ा। वियतनाम में पराजय ने पूरे अमेरिकी जनमानस को झिंझोड़कर रख दिया। अपनी शक्ति में आत्मविश्वास का जो अमेरिकी दम्भ था वह छिन्न-भिन्न हो गया। यह पूरे अमेरिकी समाज के लिए एक 'ट्राउमा' था। नतीजा यह हुआ कि वियतनाम युद्ध से जो अमेरिकी सैनिक लौटे उनमें से अधिकांश को मनोवैज्ञानिक रोग हो गये। किसी को लगता था कि कोई वियतनामी गुरिल्ला उस पर घात लगाए बैठे है और वह अगर सोया तो उसे मार दिया जाएगा। किसी को लगता था कि छत उसके ऊपर गिर जाएगी। इसी तरह के तमाम मानसिक विकार अमेरिकी सैनिकों में पनपे। इससे यह साफ़ हो गया कि दुनिया का सबसे शक्तिशाली राष्ट्र अन्दर से कितना खोखला, कमज़ोर और खण्डित है। ये रोग इस क़दर बढ़े कि अमेरिकी मनोविज्ञान में एक अलग श्रेणी का जन्म हुआ—'दि वियतनाम सिण्ड्रोम'। यह सिण्ड्रोम आज तक अमेरिका के पीछे पड़ा है।

वियतनाम विजय जनता की ताकत में अटूट आस्था पैदा करने वाली विजय है। वह अद्वितीय है। लेकिन यह भी याद रखना होगा कि अगर हम उसी विजय के नशे में चूर रहें तो भावी चुनौतियों का मुकाबला नहीं कर सकते। यह विडम्बना ही तो है कि जिस वियतनाम ने अमेरिका को हराकर जनता की विजय की एक ऐसी गाथा लिखी जिसका कोई सानी नहीं है, वही वियतनाम आज वैश्विक पूँजीवादी मण्डी की एक कड़ी बन चुका है। जिस जनता को अमेरिका अपनी सारी सैन्य ताकत झोंक कर नहीं हरा सका उसे पूँजी की घुसपैठ से और वियतनाम के अन्दर के ही पूँजीवादी तत्वों की मदद से हरा दिया। लेकिन आज फिर से वे देश जो समाजवाद की पहली प्रयोगशाला बने, असन्तोष की ज्वाला में जल रहे हैं। रूस, चीन, वियतनाम, पूर्वी यूरोप के देशों में पूँजीवादी पुनर्स्थापना के बाद बेरोज़गारी और ग़रीबी का जो आलम है उसने जनता को यह सबक दे दिया है कि समाजवाद को खोकर उन्होंने क्या खोया है। लेकिन आज विश्व क्रान्ति की निर्णायक कड़ियों में ये देश शामिल नहीं हैं। आज विश्व सर्वहारा क्रान्ति की निर्णायक कड़ी तीसरी दुनिया के वे देश हैं जहाँ पूँजीवाद अपेक्षाकृत ज्यादा उन्नत है। इन देशों में जनता के असन्तोष का महासमुद्र उफन रहा है। इन देशों में भारत भी शुमार है।

पूरा अरब अभी राष्ट्रीय मुक्ति की मंज़िल से गुज़र रहा है। अरब की लड़ाई को छोटा करके नहीं आँका जा सकता है। यह विश्व साम्राज्यवाद के ख़िलाफ़ जनता की लड़ाई का एक अहम मोर्चा है। अरब में फंसे होने के कारण ही अमेरिका ईरान, क्यूबा और उत्तर कोरिया में हस्तक्षेप नहीं कर पा रहा है।

वियतनाम पूँजी की ताकतों से हार गया। लेकिन ये हार अन्तिम नहीं है। ऐसे में लेखक को हो ची मिन्ह की ही कविता की कुछ पंक्तियाँ याद आ रही हैं :

हमारे पहाड़ हमेशा रहेंगे,
हमारी नदियाँ हमेशा रहेंगी,
हमारी जनता हमेशा रहेगी,
अमेरिकी हमलावरों को हराकर,
हम फिर से गढ़ेंगे और,
अपनी भूमि को दस गुना ज़्यादा सुन्दर बनाएँगे।

भगतसिंह ने कहा...

"भयानक असमानता और ज़बर्दस्ती लादा गया भेदभाव दुनिया को एक बहुत बड़ी उथल-पुथल की ओर लिये जा रहा है। यह स्थिति अधिक दिनों तक कायम नहीं रह सकती। स्पष्ट है कि आज का धनिक समाज एक भयानक ज्वालामुखी के मुँह पर बैठकर रंगरेलियाँ मना रहा है और करोड़ों शोषित लोग एक भयानक खड्ड की कगार पर चल रहे हैं।"

(असेम्बली में बम फेंकने के बाद दिल्ली के सेशन जज की अदालत में 6 जून, 1929 को दिया गया भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त का ऐतिहासिक बयान)

नया वर्ष
सपनों की उड़ानों के नाम
संघर्ष के संकल्पों के नाम
भविष्य में आस्था के नाम!

बाल-चेहरा-चरित्र पर कुछ चिन्तन-चर्वण

(पेज 38 से जारी)

लक्ष्मण और स्वयं को परशुराम बताकर एक नयी रामलीला की पटकथा लिख डाली। अब भाजपाइयों की साहित्यिक समझ ही ऐसी होती है कि हर उपमा और रूपक को वे चौतरफा खींचकर पूरे जीवन पर फैला देना चाहते हैं। सो वैंकैया ने खुद को हनुमान बताया, कुछ भाई लोगों ने राजनाथ सिंह को (राम का खड़ांऊ लेकर शासन करने वाला) भरत बताया और फिर दशरथ, कैकेयी, मंथरा, विभीषण, आदि-आदि की पहचान की जाने लगी। उधर मुम्बई में ही बाल ठाकरे भीष्म पितामह की तरह अपने परिवार में महाभारत की नयी पटकथा तैयार होते देख रहे थे। इन सबसे यह सिद्ध हो गया कि हिन्दुत्व की राजनीति करने वाले न केवल मिथक को इतिहास बनाने की कोशिश करते हैं, बल्कि वर्तमान को भी मिथकों का भोण्डा प्रहसन बना डालते हैं। यह भी कहा जा सकता है कि भाजपाइयों ने मिथकों की जो घिसाई की, अब मिथक उलटकर उनसे उसी का बदला ले रहे हैं और खूब फंचीटकर धो रहे हैं।

अटल बिहारी वाजपेयी का सबसे बड़ा साहित्यिक अवदान यह है कि अपनी कविता को वह मिथकों के युग से काफी आगे गिरधर कविराय और बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों की तुकबन्दी तक खींच लाए। अब इस समय के सबसे बड़े सवालों में से एक सवाल! निर्मल वर्मा को अपना जानकर एक संघी भाई जी ने उनकी एक कहानी पढ़ी। उन्होंने पढ़कर क्या समझा और क्या सोचा—है कोई माई का लाल जो बता सके?

भारतीय समाज और जनवाद पर कुछ विचार

(पेज 8 से जारी)

संघर्ष और परिवर्तन का काम न चले तो ऐसी क्रान्ति हो ही नहीं सकती। महज आर्थिक-राजनीतिक संघर्ष से तो वैसे भी कहीं कुछ नहीं होता, लेकिन भारत के मामले में तो सांस्कृतिक क्रान्तियों को अंजाम देने का काम बड़े पैमाने पर करना होगा। क्रान्ति केवल नया आर्थिक राज बनाना नहीं बल्कि एक नया मानस गढ़ने का काम होता है। नए मूल्य स्थापित तो क्रान्ति के बाद ही होते हैं लेकिन पहले से चलने वाले सांस्कृतिक संघर्ष ही ऐसी क्रान्तियों की पृष्ठभूमि तैयार करते हैं। सिर्फ व्यक्तिगत विद्रोहों से काम नहीं चलेगा, बल्कि इन रूढ़ियों को तोड़ने और जनवादी मूल्यों को जनमानस में स्थापित करने के लिए बहादुर, संवेदनशील, ज़हीन किस्म के नौजवानों को एक मंच पर आने की ज़रूरत है।

हमें यह समझना होगा कि समाज का विकास कभी नहीं रुकता; लेकिन अगर यह क्रान्तियों के ज़रिये नहीं होता तो नया समाज एक विकृत समाज ही होता है। भारत में जनवाद को पूर्णतः स्थापित करना इतिहास का बैकलॉग है जिसे भारत के युवाओं को एक सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक जनक्रान्ति के ज़रिये निपटाना है।

नया वर्ष
सपनों की उड़ानों के नाम
संघर्ष के संकल्पों के नाम!

आह्वान यहां से प्राप्त करें

उत्तर प्रदेश ■ जनचेतना, जाफरा बाजार, **गोरखपुर** ■ जनचेतना, 989, पुराना कटरा, यूनीवर्सिटी रॉड मनमोहन पार्क, **इलाहाबाद** ■ विजय इन्फार्मेशन सेण्टर, कचहरी बस स्टेशन, **गोरखपुर** ■ जनचेतना स्टाल, कॉफी हाउस के पास, हजरतगंज, **लखनऊ** (शाम 5 से 8.30 तक) ■ प्रोग्रेसिव बुक सेण्टर, विश्वनाथ मन्दिर गेट, बी.एच.यू. परिसर, **वाराणसी** ■ जनचेतना ठेला, चौड़ा मोड़, **नोएडा** (शाम 5 से 8) ■ शहीद पुस्तकालय, द्वारा डा. दूधनाथ, जनगण होम्यो सेवासदन, मर्यादपुर, **मऊ** ■ सत्यम वर्मा, 29, यू.एन.आई. अपार्टमेण्ट, सेक्टर-11, जी.एच.-2, वसुंधरा, गाजियाबाद

उत्तरांचल ■ जनचेतना, भदईपुरा, प्राइमरी स्कूल के पास, किच्छा रोड, रुद्रपुर, **ऊधमसिंहनगर**

दिल्ली ■ अभिनव सिन्हा, बी-100, मुकुन्द विहार, करावल नगर, दिल्ली ■ गीता बुक सेंटर, **जे.एन.यू.** ■ बुक कार्नर, श्रीराम सेंटर, **मंडी हाउस**

बिहार ■ पीपुल्स बुक हाउस, पटना कालेज के सामने, **पटना** ■ रामनारायण राय, द्वारा राघव पटेल कपड़े की दुकान, साहेबगंज, पोस्ट करनौल, जिला-**मुजफ्फरपुर**

बंगाल ■ बुक मार्क, 6, बंकिम चटर्जी स्ट्रीट, **कलकत्ता** ■ जनार्दन थापा, लुकसान बाजार, पो. करेन, जि. **जलपाईगुड़ी** ■ राकेश गोरखा, सरस्वती पुस्तक मन्दिर, प्रधाननगर, **सिलीगुड़ी**

मध्य प्रदेश ■ चिंचोलकर बुक हाउस, बस स्टैण्ड, जगदलपुर, **बस्तर**

महाराष्ट्र ■ पीपुल्स बुक हाउस, 15, कावसजी पटेल स्ट्रीट, फोर्ट, **मुम्बई**

पंजाब ■ सुखविन्दर, 154, ओम बेकरी के सामने, शहीद करनैल सिंह नगर, फेज़-3, पखोवाल रोड, लुधियाना

स्मृति संकल्प यात्रा के तहत देश के विभिन्न हिस्सों में अभियान, सांस्कृतिक कार्यक्रम, नुक्कड़ सभाएँ...

पिछले वर्ष 23 मार्च को भगतसिंह और उनके साथियों के 75 शहादत वर्ष के आरम्भ पर शुरू की गई स्मृति संकल्प यात्रा के तहत देश के विभिन्न क्रान्तिकारी संगठन पिछले डेढ़ वर्षों से भगतसिंह के उस सन्देश पर अमल कर रहे हैं जो उन्होंने जेल की कालकोठरी से नौजवानों को दिया था; कि छात्रों और नौजवानों को ज़रूरत है कि वे क्रान्ति की अलख लेकर गाँव-गाँव, कारखाना-कारखाना, शहर-शहर, गन्दी झोपड़ियों तक जाना होगा। इस अभियान के दौरान इन जनसंगठनों ने जो भी जनकार्रवाइयाँ की हम उसका एक संक्षिप्त ब्यौरा यहाँ दे रहे हैं। जिन इलाकों में अभियान की टोलियों ने मुहिम चलाई उनमें उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद, लखनऊ, गोरखपुर, वाराणसी, कानपुर, नोएडा, ग़ाज़ियाबाद, हापुड़; उत्तरांचल में रुद्रपुर, ऊधमसिंहनगर, हल्द्वानी; पंजाब में जालंधर, लुधियाना आदि जैसे शहर और साथ ही पूरा राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र भी शामिल है। इनमें से कुछ स्थानों की अभियान सम्बन्धी रिपोर्टें हम यहाँ प्रकाशित कर रहे हैं। — सम्पादक

दिल्ली व आस-पास के क्षेत्रों में सघन अभियान व सांस्कृतिक कार्यक्रम

शहीदे आज़म भगतसिंह के 75वें शहादत वर्ष (23 मार्च 2005) से आरम्भ हुई स्मृति-संकल्प यात्रा के तहत विभिन्न जनसंगठनों द्वारा जगह-जगह पर सांस्कृतिक कार्यक्रम किये गये, ट्रेनों, बसों, नुक्कड़ चौराहों व घर-घर में घनीभूत जनसम्पर्क अभियान चलाया गया।

इस अभियान के तहत दिशा छात्र संगठन की सांस्कृतिक टोली 'विहान' ने दिल्ली विश्वविद्यालय के परिसर में विभिन्न स्थानों पर क्रान्तिकारी गीतों के कन्सर्ट और क्रान्तिकारी नाटकों की नुक्कड़ प्रस्तुतियाँ कीं। इसी अभियान के तहत कला संकाय के ओपेन एयर थियेटर में 14 दिसम्बर को संगीत कन्सर्ट और नुक्कड़ नाटकों की प्रस्तुति की। इस कार्यक्रम को छात्रों-छात्राओं द्वारा काफी सराहा गया। कई छात्रों ने भगतसिंह के विचारों को इस रचनात्मक तरीके से जन-जन तक पहुँचाने के अभियान से जुड़ने की इच्छा भी जाहिर की। इसके बाद 'विहान' की टोली ने 13 जनवरी की रात को शिक्षा संकाय में संगीत कन्सर्ट का आयोजन किया जिसमें फ़ैज़, मुक्तिबोध, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना जैसे कवियों की कविताओं की सांगीतिक प्रस्तुति की गई और साथ ही बॉब डिलन और जॉन लेनन के गीतों की भी प्रस्तुति की गई। यहाँ भी छात्रों ने कार्यक्रम को काफी सराहा और भरपूर सहयोग किया।

नौजवान भारत सभा और दिशा छात्र संगठन ने मुकुन्द विहार में दो दिन (18-19 दिसम्बर) का निशुल्क मेडिकल कैम्प का आयोजन किया जिसमें 700 लोगों की जाँच की गई। इसी कैम्प में पोस्टर प्रदर्शनी का भी आयोजन हुआ। स्मृति संकल्प यात्रा के तहत ही आयोजित इस कार्यक्रम के दौरान नौभास के कार्यकर्ता और दिशा के वॉलण्टियर लगातार मज़दूरों को यह बताते रहे कि निशुल्क चिकित्सा का अधिकार हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है और इसे उन्हें लड़कर लेना ही होगा। सिर्फ दो दिन के मेडिकल कैम्प से स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं का हल नहीं हो जाएगा बल्कि महज एक फ़ौरी राहत मिलेगी।

नौजवान भारत सभा *द्वारा आयोजित मेडिकल कैम्प का एक दृश्य*

नौजवान भारत सभा और बच्चा पार्टी ने संयुक्त रूप से नववर्ष की पूर्वसंध्या पर एक सांस्कृतिक कार्यक्रम किया और इस कार्यक्रम को 'नया वर्ष नये सपनों और नये संकल्पों के नाम' नाम दिया। इस कार्यक्रम ने नौभास और बच्चा पार्टी ने एक-एक नाटक और कुछ क्रान्तिकारी गीत प्रस्तुत किये। इस कार्यक्रम के दौरान वक्ताओं ने स्मृति संकल्प यात्रा का सन्देश वहाँ भारी संख्या में मौजूद लोगों तक पहुँचाया। बच्चों ने अपने गीतों के जरिये बड़े-बुज़ुर्गों को जाति और धर्म के भेदों से ऊपर उठने की सीख दी।

स्मृति संकल्प यात्रा के दौरान दिशा छात्र संगठन और

नौजवान भारत सभा ने दिल्ली को केन्द्र बनाकर हापुड़, ग़ाज़ियाबाद तक ट्रेनों में अभियान चलाया और भगतसिंह के विचारों को यात्रियों तक पहुँचाया और स्मृति संकल्प यात्रा के पर्चे वितरित किये। यात्रियों को यह जानकर काफी ताज्जुब हुआ कि आज के दौर में भी ऐसे नौजवान पाये जाते हैं जो भगतसिंह के सपनों को जीवित रखे हुए हैं और शहीदे-आज़म के विचारों को दूर-दूर तक पहुँचा रहे हैं। लोगों ने अभियान टोली का दिल से उत्साह बढ़ाया और सहयोग किया। ट्रेनों के अतिरिक्त दिशा और नौभास की संयुक्त टोलियों ने दिल्ली की स्थानीय बसों में भी व्यापक अभियान चलाया। इन अभियानों को विशेष रूप से भारी सहयोग प्राप्त हुआ। बस में सफ़र करने वाले मुसाफ़िरों ने टोली की बात को ध्यान से सुना और कई नौजवानों ने इस मुहिम से तत्काल जुड़ने की इच्छा प्रकट की। कई बसों के कण्डक्टर तो अभियान टोली को पहचान चुके थे और जब भी उसे देखते थे तो अपनी बस के यात्रियों को भगतसिंह का सन्देश देने के लिए बुलाते थे। इतना ही नहीं बस में आने पर वे यात्रियों से स्वयं अपील करते थे कि वे इस अभियान में सहयोग करें।

इसके अतिरिक्त, दिशा और नौभास की टीम ने हापुड़ में जीवन बीमा, जल निगम, विद्युत विभाग और नगर निगम के दफ्तरों में अभियान चलाया और कर्मचारियों को सरकार की मज़दूर विरोधी नीतियों की असलियत बताई। दिल्ली में एमटीएनएल और एनडीपीएल के दफ्तर में भी अभियान चलाया और कर्मचारियों ने युवाओं के इस प्रयास को दिल खोलकर सराहा और मदद की। अभियान टोली ने दिल्ली के तिमारपुर, रोहिणी, मॉरिस नगर, नॉर्थ कैम्पस के स्टाफ फ्लैटों, सादतपुर, भगतसिंह कॉलोनी, प्रेमनगर, मुकुन्द विहार, प्रकाश विहार इलाकों में व्यापक और घनीभूत जनसम्पर्क अभियान चलाया। इस दौरान इन जगहों के निवासियों ने इस प्रयास को सराहनीय बताया और टोली से नियमित तौर पर आने को कहा।

ये नुक्कड़ सभाएँ, सांस्कृतिक कार्यक्रम, बस एवं ट्रेन अभियान, घर-घर जनसम्पर्क अभियान यह रपट लिखे जाने तक जारी थे।

आह्वान टीम, दिल्ली.

नाउम्मीदों की एक उम्मीद–क्रान्ति!

शहीदे-आज़म भगतसिंह और उनके साथियों के अधूरे सपनों की स्मृति जगाने और उन्हें पूरा करने के लिए एक नयी जनक्रान्ति का आह्वान करते हुए स्मृति-संकल्प यात्रा के अन्तर्गत गोरखपुर, इलाहाबाद और लखनऊ में लगातार विभिन्न प्रकार की जनकार्रवाइयाँ जारी हैं। उत्तर प्रदेश के इन प्रमुख महानगरों में दिशा छात्र संगठन और नौजवान भारत सभा के कार्यकर्ता संयुक्त टोलियाँ बनाकर औश्र अलग-अलग जनप्रचार की विविध कार्रवाइयों के जरिये छात्रों-युवाओं और मेहनतकश आबादी के बीच यह आह्वान कर रहे हैं–**'भगतसिंह की बात सुनो, नयी क्रान्ति की राह चुनो।'**

प्रभात फेरियों, नुक्कड़ सभाओं व **नुक्कड़ नाटकों** के जरिये, घर-घर घनीभूत जनसम्पर्क अभियान चलाकर **पोस्टर प्रदर्शनियों** और **विचार गोष्ठियों** का आयोजन करके इन शहरों के विभिन्न मुहल्लों, स्कूलों-कॉलेजों-दफ्तरों में छात्रों-युवाओं और व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच स्मृति-संकल्प यात्रा का यह सन्देश पहुँचाया जा रहा है कि देशी-विदेशी पूँजी की बर्बर लूट से जनता की मुक्ति के लिए एक नयी जनक्रान्ति की तैयारी ही अब एकमात्र विकल्प है।

गोरखपुर और **इलाहाबाद** में यात्रा के अन्तर्गत यतीन्द्रनाथ दास के शहादत दिवस (13 सितम्बर) और शहीदे आज़म के जन्मदिवस (28 सितम्बर) के बीच एक पखवारे तक एक विशेष अभियान चलाया गया। महानगर गोरखपुर के सूर्यकुण्ड-सूर्यविहार, शाहपुर आवास-विकास, राप्तीनगर, हुमायूँपुर, बिलन्दपुर, कालेपुर, दाउदपुर आदि कॉलोनियों-मुहल्लों में **प्रभात फेरियाँ** निकाली गयीं व घनीभूत जनसम्पर्क कर पर्चा वितरण किया गया। गोरखपुर विश्वविद्यालय, दिग्विजय नाथ महाविद्यालय, सेण्ट एण्ड्रयूज महाविद्यालय और डीएवी महाविद्यालय के साथ ही शहर के कई इण्टर कॉलेजों में भी **नुक्कड़ सभाओं** व **पोस्टर प्रदर्शनियों** का आयोजन किया गया। भगतसिंह के विचारों पर आधारित पोस्टर प्रदर्शनी छात्रों-युवाओं की व्यापक आबादी के बीच भगतसिंह की वैचारिक विरासत को पहुँचाने में बेहद कारगर रही।

गोरखपुर विश्वविद्यालय में भगतसिंह के जन्मदिवस पर संवाद भवन में एक विचार गोष्ठी का आयोजन किया गया जिसका विषय था–**'भगतसिंह की वैचारिक विरासत, आज का समय और हम'** जिसकी अध्यक्षता चर्चित कथाकार मदनमोहन ने की। गोष्ठी कक्ष छात्रों से खचाखच भरा था। इसमें वक्ताओं ने जेल में लिखे गए भगतसिंह के विभिन्न लेखों, पर्चों, पत्रों और अदालतों में दिये गये बयानों के हवाले से छात्रों-युवाओं को परिचित कराया और देशी सत्ताधारियों की उस साज़िश का भाण्डाफोड़ किया जिसके चलते वे भगतसिंह के विचारों को युवा पीढ़ी तक नहीं पहुँचने देना चाहते। देशी सत्ताधारी इस सच्चाई को बखूबी जानते हैं कि भगतसिंह के विचार उनकी हुकूमत के लिए भी उतने ही खतरनाक हैं जितने वे अंग्रेज़ी हुकूमत के लिए थे।

विचार गोष्ठी में वक्ताओं ने भूमण्डलीकरण के मौजूदा दौर में देशी पूँजीवाद द्वारा साम्राज्यवाद से साँठ-गाँठ की असलियत को बेनक़ाब करते हुए आगाह किया कि छात्रों-नौजवानों को चुनावबाज मदारियों का पिछलग्गू बनने से बचना होगा और उन्हें नये सिरे से गाँव-गाँव और शहर-शहर में तथा तमाम कॉलेजों-विश्वविद्यालयों में अपने क्रान्तिकारी संगठन बनाने होंगे।

इलाहाबाद में इस विशेष पखवारे के अन्तर्गत टैगोर टाउन, तेलियर गंज, जॉर्ज टाउन, कम्पनी बाग आदि मुहल्लों में प्रभात फेरियाँ निकाली गईं व घनीभूत जनसम्पर्क कर पर्चा वितरण किया गया। इसके साथ ही नगर निगम, ए.जी. ऑफिस, हाईकोर्ट आदि दफ्तरों में नुक्कड़ नाटक व सभाओं के जरिये नये जनमुक्ति संग्राम का सन्देश पहुँचाया गया। तरुण पीढ़ी के बीच भगतसिंह के विचारों को पहुँचाने के लिए सीएवी इण्टर कॉलेज, कर्नरगंज इण्टर कॉलेज, बिशप जॉनसन इण्टर कॉलेज, बाल भारती स्कूल और बीबीएस इण्टर कॉलेज सहित कई कॉलेजों में पोस्टर व साहित्य की प्रदर्शनियों का आयोजन किया गया। इन प्रदर्शनियों के जरिये तरुणों ने आश्चर्य के साथ इस सच्चाई को जाना कि 23 वर्ष की छोटी सी उम्र में फाँसी का फन्दा चूमने वाला वह जाँबाज़ नौजवान कितना ओजस्वी, प्रखर और दूरदर्शी चिन्तक था।

दिशा छात्र संगठन व नौजवान भारत सभा की संयुक्त टोलियों ने ट्रेनों और बसों में मुसाफिरों के बीच प्रचार की अनूठी कार्यवाही चलाते हुए हज़ारों की संख्या में पर्चों का वितरण किया ताकि जड़ता व गतिरोध की मौजूदा स्थिति में क्रान्ति की स्पिरिट

ताज़ा की जा सके और इंसानियत की रूह में हरक़त पैदा की जा सके। गोरखपुर, वाराणसी, इलाहाबाद, लखनऊ, कानपुर आदि प्रमुख रेलवे स्टेशनों को केन्द्र बनाकर विभिन्न दिशाओं में जाने वाली ट्रेनों के जरिये विभिन्न दिशाओं में सुदूर अंचलों के मुसाफ़िरों के बीच स्मृति-संकल्प यात्रा का सन्देश पहुँचाये।

भगतसिंह के विचारों व सपनों के हरकारों की इन टोलियों की ऊर्जस्विता, गतिमानता और युवा-सुलभ ताज़गी और उत्साह को मुसाफिरों ने आश्चर्य-मिश्रित हर्ष के साथ स्वागत किया और भरपूर सहयोग दिया।

प्रस्तुति : 'आह्वान' टीम, गोरखपुर

भगतसिंह का ख़्वाब अधूरा, इसी सदी में होगा पूरा

नोएडा। नौजवान भारत सभा की ओर से स्मृति-संकल्प यात्रा के तहत शहीदे-आज़म भगतसिंह और उनके साथियों के विचारों को जन-जन तक पहुँचाने तथा एक नये जनमुक्ति संघर्ष की तैयारी के लिए सांस्कृतिक अभियानों की शुरुआत की।

इस अभियान की शुरुआत मेरठ शहर से हुई, जहाँ 1857 में प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की शुरुआत हुई थी। यहाँ पर प्रेमनगर, जैननगर तथा रेलवे स्टेशन के आस-पास के इलाकों में सघन रूप में स्मृति-संकल्प यात्रा का पर्चा वितरित करने के साथ कई जनसभाएँ भी आयोजित की गईं जिसमें क्रान्तिकारी गीत भी गाए गए।

वक्ताओं ने कहा कि भगतसिंह और उनके साथी व्यापक आम मेहनतकश आबादी के लिए आज़ादी चाहते थे न कि थैलीशाहों के लिए। उन्होंने कहा कि भगतसिंह ने उसी समय जनता को आगाह करते हुए कहा था कि कांग्रेस सिर्फ पूँजीपतियों की आज़ादी चाहती है। कांग्रेस की लड़ाई का अन्त साम्राज्यवाद के साथ एक समझौते के रूप में होगा।

नोएडा, ग़ाज़ियाबाद तथा दिल्ली के तमाम कार्यालयों में भी नौभास के कार्यकर्ताओं ने अभियान चलाया। नोएडा की झुग्गी बस्तियों में 'भगतसिंह की बात सुना, नई क्रान्ति की राह चुना!', 'भगतसिंह का ख़्वाब अधूरा, इसी सदी में होगा पूरा!' आदि नारे लगाते हुए जब नौजवानों की टीम ने प्रवेश किया तो मज़दूरों का उत्साह देखने लायक था। मज़दूरों ने क्रान्तिकारियों का साहित्य छापने के लिए न सिर्फ आर्थिक सहयोग किया बल्कि उनके बीच युवा टोली को अपने-अपने घर ले जाकर भोजन पानी कराने के लिए होड़-सी मच गई। नौजवान भारत सभा के कार्यकर्ताओं ने घर-घर जाकर मज़दूरों को हर तरह के ज़ोरो-जुल्म और पूँजीवादी शोषण के ख़िलाफ़ उठ खड़ा होने का आह्वान किया।

नोएडा तथा ग़ाज़ियाबाद के विभिन्न कॉलेजों में छात्रों के बीच भगतसिंह का साहित्य वितरित किया गया। संगठन के कार्यकर्ताओं ने छात्रों को सम्बोधित करते हुए कहा कि भगतसिंह ने छात्रों को सामाजिक बदलाव के लिए हमेशा मुख्य शक्ति माना था। उन्होंने छात्रों से कहा था कि 'विद्यार्थियों को क्रान्ति का सन्देश लेकर खेतों-खलिहानों तथा झुग्गी-बस्तियों में जाना होगा।'

छात्रों के बीच क्रान्तिकारी गीतों को काफी सराहा गया। युवा टोल की ओर से भगतसिंह के सपनों का साकार करने तथा एक नये क्रान्तिकारी बदलाव के लिए छात्रों को आगे आने का आह्वान किया गया।

विभिन्न दफ्तरों में पर्चा वितरित करने के साथ ही स्मृति-संकल्प यात्रा के कार्यकर्ताओं ने कर्मचारियों को बताया कि भगतसिंह मेहनतकशों की आज़ादी चाहते थे इसलिए उन्होंने ट्रेड डिस्प्यूट बिल का विरोध करते हुए असेम्बली में बम फेंका था। भगतसिंह और उनके साथियों ने साफ़ तौर पर कहा था कि वे 90 प्रतिशत मेहनतकशों की आज़ादी चाहते हैं।

कार्यकर्ताओं ने कर्मचारियों को आगाह करते हुए कहा कि नयी आर्थिक नीति लागू होने के बाद से हमारा देश देशी-विदेशी पूँजीपतियों के लिए खुला चारागाह बन गया है। श्रम कानूनों में सुधार के नाम पर जिन अधिकारों को कर्मचारियों-मज़दूरों ने लड़कर हासिल किया था उन्हें एक-एक करके छीना जा रहा है। लाल झण्डे वाली तमाम चुनावबाज़ पार्टियाँ भी अब खुले रूप में मज़दूरों के ख़िलाफ़ खड़ी हो गई हैं। इसलिए अब एक नये जनमुक्ति संघर्ष के अलावा मेहनतकश आबादी के पास दूसरा कोई विकल्प नहीं है।

आह्वान टीम, नोएडा

सड़क और साफ़ पानी के अधिकार के लिए नौजवान भारत सभा के नेतृत्व में जुझारू सड़क निर्माण आन्दोलन

नौजवान भारत सभा द्वारा दिल्ली के करावल नगर इलाके की मुकुन्द विहार कॉलोनी में सड़क निर्माण के लिए एक आन्दोलन चलाया गया। ज्ञात हो कि मुकुन्द विहार में कॉलोनी बनने के 25 वर्ष बाद भी न तो पक्की सड़क है, न साफ़ पीने का पानी है, न नालियाँ हैं। यानी, बुनियादी नागरिक सुविधाओं से भी वहाँ रहने वाली ग़रीब और निम्न मध्यम वर्गीय आबादी को वंचित करके रखा गया है। इसके ख़िलाफ़ लम्बे समय से जनता में रोष था। पहले कुछ व्यक्तिगत प्रयास सड़क बनवाने के लिए किए गए, लेकिन एकजुटता के अभाव में ये प्रयास असफल हो गए।

नौजवान भारत सभा ने हर नववर्ष की पूर्वसंध्या पर होने वाले अपने कार्यक्रम में पिछले वर्ष मुकुन्द विहार के निवासियों का यह आह्वान किया था कि वे वर्ष 2005 मानव जैसे जीवन का हक जीतने के लिए संघर्ष का वर्ष बनाएँ। और सितम्बर, 2005 में 'सड़क निर्माण आन्दोलन' शुरू हो गया। 20 अक्टूबर को स्थानीय निवासियों में सड़क के और नाली के अधिकार के प्रति जागरूकता पैदा करने के लिए नौभास के कार्यकर्ताओं ने पर्चा वितरण किया।

इसके बाद 21 अक्टूबर से घर-घर हस्ताक्षर अभियान चलाया गया। इसमें करीब 1000 लोगों ने हस्ताक्षर किये। 22 अक्टूबर की शाम मुकुन्द विहार में एक व्यापक जनसभा आयोजित की गई जिसमें 200 लोगों ने हिस्सा लिया और आम सहमति से एक माँग-पत्रक तैयार किया गया। इसके बाद हस्ताक्षर अभियान के कागज और माँग पत्रक सहित मुकुन्द विहार का एक प्रतिनिधि मण्डल नौभास के कार्यकर्ताओं के नेतृत्व में क्षेत्र के विधायक भाजपा के मोहन सिंह बिष्ट से मिला। नतीजा वही था जो नेताओं से मिलने पर होता है। आश्वासन और निराशा! और नौभास के

कार्यकर्ता इस बात से अच्छी तरह वाकिफ़ थे। इसके बाद हस्ताक्षर अभियान की प्रतिलिपियाँ इलाके के निगम पार्षद, मुख्यमंत्री, दिल्ली, शहरी विकास मंत्री, दिल्ली, सांसद (पूर्वी दिल्ली), और उपराज्यपाल, दिल्ली और दिल्ली नगर निगम को दी गईं। 25 अक्टूबर को नौभास के नेतृत्व में मुकुन्द विहार के निवासियों का एक प्रतिनिधि मण्डल निगम पार्षद जगदीश प्रधान और सांसद सन्दीप दीक्षित से मिला। भारी जनदबाव से मजबूर होकर सन्दीप दीक्षित को यह वायदा करना पड़ा कि दीपावली के बाद सड़क निर्माण के काम की प्रक्रिया शुरू कर दी जाएगी। दीपावली के बाद नौभास का प्रतिनिधि मण्डल फिर से निगम पार्षद से मिला। इसके बाद यह बात इन "जनप्रतिनिधियों" के समझ में आ गई कि अब मुकुन्द विहार की जनता को बहुत समय तक बहका पाना मुश्किल है। नतीजतन, इस मुलाकात के बाद पखवारा बीतने से पहले ही सड़क निर्माण आन्दोलन को अपनी पहली ठोस विजय मिली, जब सड़क निर्माण की प्रक्रिया मापन और मूल्यांकन के साथ शुरू हो गई।

इसके बाद नौभास ने फिर एक जनसभा का आयोजन किया जिसमें लोगों को नौभास कार्यकर्ताओं ने यह याद दिलाया कि अभी संघर्ष खत्म नहीं हुआ बल्कि यह महज पहली जीत है। हमें यह संघर्ष तब तक चलाना होगा जब तक कि हम मुकुन्द विहार की सारी सड़कें नहीं बनवा लेते।

इसके बाद सड़क निर्माण के काम को एक वैकल्पिक सत्ता की निगरानी में करवाने के मकसद से नौभास के नेतृत्व में मुकुन्द विहार के दस लोगों की एक निगरानी कमेटी बनाई गई जो यह रिपोर्ट लिखे जाने तक नियमित तौर पर कार्य प्रगति का जायज़ा लेती रहती है। और यह निगरानी कमेटी कुछ टुच्चे छुटभैया नेताओं और लुटे-पिटे चौधरियों की तोड़-फोड़ की कोशिशों और हेकड़ी चलाने के प्रयासों को भी नाकाम करती रहती है और मुकुन्द विहार की जनता में इन लोगों के भय को समाप्त करने का काम भी करती है।

मेरठ में पुलिस के ऑपरेशन मजनूँ के ख़िलाफ़ दिशा छात्र संगठन का व्यापक हस्ताक्षर अभियान

ज्ञात हो कि मेरठ की पुलिस ने छेड़खानी रोकने के नाम पर गाँधी पार्क नामक एक सार्वजनिक स्थल पर बैठे लड़के-लड़कियों को बेइज़्ज़त करना और बुरी तरह मारना-पीटना शुरू कर दिया। इस घिनौनी हरकत से पूरे देश के युवाओं में गुस्से और नफ़रत की लहर दौड़ गयी। इस घटना में दोषी पुलिसकर्मियों को सज़ा दिलाने की माँग करते हुए और यह माँग करते हुए कि आगे से इस किस्म का कोई भी अभियान न चलाया जाय, दिशा छात्र संगठन ने दिल्ली विश्वविद्यालय में 20 से 23 दिसम्बर तक सघन हस्ताक्षर अभियान चलाया। इस हस्ताक्षर अभियान को छात्र-छात्राओं का शानदार समर्थन प्राप्त हुआ।

कई छात्रों ने यह भी कहा कि अगर मेरठ चलना पड़े तो वे चलने को भी तैयार हैं। तीन दिन तक हस्ताक्षर अभियान चलने के बाद करीब 1300 हस्ताक्षर जुटाकर हस्ताक्षर अभियान की प्रतिलिपियाँ मुख्यमंत्री (उ.प्र.), आई. जी. (मेरठ ज़ोन), डी.जी.पी. (मेरठ), राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, राष्ट्रीय महिला आयोग को प्रेषित कीं।

फ्रांस में सड़कों पर...

(पेज 32 से जारी)

हों, नस्लवादी, रंगभेदवादी भेदभाव और अपमान सहती है। 11 सितम्बर को वर्ल्ड ट्रेड सेण्टर पर हुए हमले के बाद इस आबादी की स्थितियाँ और बदतर हो गईं। पहले उन्हें रंगभेद और नस्लभेदवादी नज़रिये से देखा जाता था। अब वे उनकी नज़रों में आतंकवादी भी थे। हर अप्रवासी को आतंकवादी होने के शक में तरह-तरह की अपमानजनक जाँच-पड़तालों से होकर गुज़रना पड़ता है। ऐसी स्थितियों को झेलते युवा ज़्यादा दिन ख़ामोश नहीं रह सकते थे। उनके अन्दर जमा हो रहा आक्रोश जल्दी ही अपने लिए मार्ग तलाश लेता। दो किशोरों की बिजली घर दुर्घटना में हुई मौत ने उसे रास्ता दिया। बेरोज़गारी और अपमान, कह सकते हैं कि एक तो करेला और वह भी नीम चढ़ा। इसके विरोध में तीन सप्ताह तक चली आगजनी और तोड़-फोड़ अभी तो शुरुआत मात्र है।

फ्रांस पूँजीवादी विश्व के चमकते सितारों में से एक है। लेकिन इस पूँजीवादी स्वर्ग में हुई इस घटना ने सारे पर्दे गिरा दिये हैं। यह सच्चाई इसी पूँजीवादी स्वर्ग पर लागू नहीं होती बल्कि अन्य सभी पूँजीवादी स्वर्ग पर लागू होती है। आपको याद होगा कि 1992 में अमेरिका में एक अश्वेत युवक रोडनी किंग की पुलिस द्वारा बर्बर पिटाई के बाद भी अश्वेत युवकों का गुस्सा हिंसक वारदातों के रूप में फूट पड़ा था।

फ्रांस की पूँजीवादी सरकार पर ही नहीं बल्कि दुनिया भर की पूँजीवादी सत्ताओं पर ये तीन सप्ताह बहुत भारी गुज़रे हैं। दूसरों से चाहे कितना छिपायें लेकिन इस कुरूप सच्चाई से वे बहुत भली तरह वाकिफ़ हैं कि हर जगह इस तरह की आबादी है। और उनकी जीवन स्थितियाँ बद से बदतर हो रही हैं। फ्रांस के युवाओं की यह स्वतःस्फूर्त बग़ावत फ़िलहाल शान्त हो गई है। लेकिन यह दुनिया की अन्य जगहों के नौजवानों को, जो इस तरह की बेरोज़गारी, अभाव और अपमान झेल रहे हैं, उन्हें अपनी आवाज़ बुलन्द करने की प्रेरणा देगा। फ्रांसीसी हुक्मरानों की यह कोशिश रहेगी कि वे समाज में पड़ चुकी दरारों को और चौड़ा करते जाएँ। लेकिन उनकी ये कोशिशें हमेशा कामयाब होती रहेंगी, यह मानना इतिहास की गति को नज़रअन्दाज़ करना होगा। पूँजीवाद रूपी बुड्ढा जीने की ख़्वाहिश का इस कदर शिकार है कि जैसे तैसे नस्ल और धर्म, राष्ट्रीयता और भाषा, क्षेत्र और जाति के मतभेद जनता में सुलगा कर जिये जाने की कोशिश किये जा रहा है। लेकिन बूढ़ा चाहे जो भी यत्न करे मौत के करीब ही होता जाता है। शोषण, उत्पीड़न करने वाली यह व्यवस्था खोखली होती जा रही है। इस पर विद्रोह-रूपी दरारों की संख्या बढ़ती जा रही है।

मेहनतकश अवाम के संघर्षों के केन्द्र तो फिलहाल एशियाई, लातिन अमेरिकी और अफ्रीकी देश ही बनेंगे। लेकिन इनसे पश्चिमी देशों के मेहनतकश अछूते रहेंगे, इसकी कल्पना कर पाना मुश्किल है। फ्रांस की राजधानी पेरिस जहाँ मज़दूरों ने अपनी पहली सरकार बनाई थी, वहाँ मेहनतकश अवाम फिर से संघर्ष कर अपने द्वारा फहराये गये स्वतंत्रता-समानता-भ्रातृत्व के परचम को ऊँचा उठाएगा।

कचोटती स्वतंत्रता

• नाज़िम हिकमत

तुम बेचते हो अपनी आँखों का शऊर, अपने हाथों की दृष्टि
तुम बनाते हो लोइयाँ दुनिया भर की चीज़ों की
बिना एक कौर चखे।
अपनी महान आज़ादी के साथ तुम खटते हो गैरों के लिए
जो तुम्हारी अम्मा को कलपाते-रुलाते हैं, उन्हें
धन्नासेठ बनाने की आज़ादी के साथ
तुम स्वतंत्र हो।
धरती पर गिरने के साथ ही वे सवार हो जाते हैं तुम्हारे सिर पर
उनकी झूठ चक्कियाँ पीसती हैं लगातार तुम्हारी ज़िन्दगी
हथेलियों से कनपटियाँ दाबे महान आज़ादी के साथ बिसूरते हो तुम
अन्तःकरण की स्वतंत्रता के साथ
तुम स्वतंत्र हो।
तुम्हारा झूलता सिर अलग हुआ जान पड़ता है तुम्हारी गर्दन से
लटकती हैं बाहें आजू-बाजू
मटरगश्ती करते हो तुम अपनी महान आज़ादी में
बेरोज़गारी की स्वतंत्रता के साथ
तुम स्वतंत्र हो।
तुम प्यार करते हो देश को जिगरी दोस्त के समान
किसी रोज़ वे, उसे बेच देत हैं, शायद अमेरिका को
साथ में तुम्हें भी, तुम्हारी महान आज़ादी समेत
हवाई अड्डा बनने की स्वतंत्रता के साथ
तुम स्वतंत्र हो।
वॉल स्ट्रीट तुम्हारी गर्दन जकड़ती है सत्यानाश हो उसके हाथों का
किसी दिन वे तुम्हें भेज देते हैं कोरिया
अपनी महान आज़ादी से तुम भरते हो एक कब्र...
गुमनाम सैनिक हो जाने की स्वतंत्रता के साथ
तुम स्वतंत्र हो।
लोहे का फाटक नहीं,
परदा नहीं फरदे का, टाट तक की ओट नहीं
ज़रूरत ही क्या है तुम्हें स्वतंत्रता का वरण करने की
तुम स्वतंत्र हो।
नीली छतरी के तले कचोटती है ऐसी स्वतंत्रता।

आधुनिक काल

• बॉबी सैण्ड्स

(आयरलैण्ड की मुक्ति के लिए संघर्ष करने वाला एक युवा कवि क्रान्तिकारी जो यतीन्द्रनाथ दास की ही तरह राजनीतिक कैदी का दर्जा देने की माँग को लेकर अनशन करते हुए 1981 में शहीद हो गया।)

कहा जाता है
हम रहते हैं आधुनिक काल में
उन्यासी के सुसभ्य साल में
पर नज़रें दौड़ाता हूँ जब मैं अपने चारों ओर
देख पाता हूँ सिर्फ
आधुनिक यातना, दर्द और ढोंग।
छोटे बच्चे मरते हैं आधुनिक काल में
मरते हैं वे भूखों तड़प-तड़पकर,
कौन यह पूछने की हिम्मत करता है, "आखिर क्यों?"
नापाम बमों से आहत भागती हैं निर्वस्त्र नन्हीं लड़कियाँ
अपनी चीखों से भेदती हुई रात की हवाओं को
और जब मोटे थुलथुल तानाशाह
आसीन होते हैं अपने सिहांसनों पर
नन्हें बच्चे दफ्न करते होते हैं
अपने माँ-बापों की अस्थियाँ।
निस्तब्ध रात्रि में खुफ़िया पुलिस नज़रों से
ओझल कर देती है नंगी औरतों को
हमेशा-हमेशा के लिए बिजली के झटके दे-देकर।
गटर में मरा पड़ा होता है काला आदमी।
जहाँ बहती है तेल की सबसे अधिक काली धार
गली लाल हो उठती है
और यहीं वह रहता है
जो पैदा हुआ, आया रहने के लिए
इस दुनिया-जहान में
लेकिन जिया और मरा आज़ादी के बिना।
नौकरशाह, सट्टेबाज और राजाध्यक्ष
सभी टाँक देते हैं अपनी गन्दी, दुर्गन्धित प्रसन्न हँसी
आज की रात के सीने पर।
अपनी कब्र से चीखेगा एक अकेला आदमी
और आने वाले कल का अभागा
अपनी माँ के गर्भ से बाहर आ जाएगा।

अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस (8 मार्च) पर विशेष

रुको, ठहरो और सुना
हमारी शक्ति की आवाज़
हृदय की मौन पुकार
हम सक्षम हैं, सक्षम हैं, सक्षम हैं।

कोटि-कोटि हाथों की ताकत में
जोड़ दो अपनी ताकत
आने दो ज्वार बदलाव का
बढ़ती चली, आगे
नये वक्त, नयी जगह
अपने ही बनाए नये युग की ओर।

खिलने दो क्रोध के फूल
बिखरने दो अंगारे
कुचल दो सख्ती से उस अन्याय को
भोगती आई है जिसे सब औरतें
और दलित वर्ग सारे

-नारी सभा

बहनो आओ! साथियो आओ!
आगे बढ़ो!! आगे बढ़ो!!
एक लम्बी और कठिन यात्रा पर
रवानगी के लिए जागो!

यात्रा हज़ारों मील लम्बी है
पर हर लम्बी यात्रा की शुरुआत
एक छोटे से कदम से ही होती है।

उठो और एकता कायम करो!
एकता कायम करो
और संगठित हो जाओ!
संगठित हो जाओ और संघर्ष करो!
संघर्ष करो और
दस्तक दो मुक्ति के द्वार पर!
शक्ति और ताप भरे अनगिनत हाथों से
एक साथ! एक साथ!! एक साथ!!!

-नारी सभा

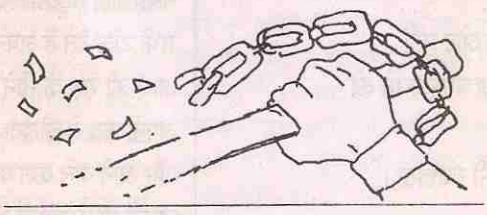

छात्रों-युवाओं के लिए जनरल नालेज का आखिरी सबक

चुनाव क्या है?

जनता की गाढ़ी कमाई के करोड़ों रुपये खर्च करके जनता के ही साथ धोखाधड़ी!

चुनावी नेता क्या हैं?

पूँजीपतियों के कुत्ते, साम्राज्यवादियों के टट्टू!

आज चुनावी पार्टियों के सफल नेता कौन हो सकते हैं?

चोर, पॉकेटमार, ठग, बटमार, तस्कर, दंगाई, गुण्डे, वेश्यागामी, लोफर-आवारे, दलाल, ठेकेदार, सिनेमा के भांड, खूनी, माफिया-सरगना और धर्म के व्यापारी!

संसद क्या है?

सुअरबाड़ा! गुण्डों-डकैतों-वेश्यागामियों-भ्रष्टाचारियों का अड्डा। यही आज के पूँजीपतियों के राजनीतिक प्रतिनिधि हैं!

वोट कैसे पड़ते हैं?

जाति-धर्म पर जनता को बाँटकर, दंगे भड़का कर, नोटों से खरीदकर, बन्दूकों से डराकर, गरीबों को लालच देकर!

संसद-विधानसभाओं में क्या होता है?

कुछ दिखावटी बहसें, मारपीट, जूतम-पैजार, औश्र असली काम होता है जनता को लूटने-कुचलने के कानून बनाने का!

सरकार क्या करती है?

देशी-विदेशी पूँजीपतियों की सेवा, उनकी लूट को बढ़ाना और व्यवस्थित करना, जनता को कुचलना, धोखा देना।

पूँजीवादी शिक्षा क्या करती है?

नौजवानों की रीढ़ की हड्डी निकाल लेती है। दिमाग में भूसा भर देती है। धनिकों के बेटों को अफसर बनने की ट्रेनिंग देती है। गरीबों के कुछ बेटों को क्लर्क और चपरासी बनने की शिक्षा देती है और बाकी को बेरोज़गार भटकते हुए, दीन-हीन बेचारा बनकर जीने की आदत सिखाती है!

स्वास्थ्य विभाग क्या करता है?

पैसे वालों को चंगा करके उनके घर भेजता है और गरीबों को उनके सभी कष्टों से छुटकारा दिलाकर भगवान के घर।

भारतीय जनतंत्र क्या है?

पूँजीपतियों की तानाशाही!

तथाकथित जनतांत्रिक संस्थाएँ और न्यायपालिका क्या है?

पूँजीवादी शासन के दिखाने के दाँत!

और खाने के दाँत?

फौज, पुलिस, जेल, नौकरशाही!

न्यायपालिका क्या करती है?

थैलीशाहों के हित में न्याय का व्यापार! पूँजीवादी न्याय की नज़र में गरीब होना ही एक अपराध है! शोषण पूँजीपतियों का जन्मसिद्ध अधिकार है! जुल्म को चुपचाप सहना शरीफ़ नागरिक का गुण है! जुल्म का विरोध सबसे संगीन जुर्म है।

इस पूरे ढाँचे का विकल्प क्या है?

जुल्म के ख़िलाफ़ मेहनतकशों और आम लोगों की एकता! इंकलाबी संगठनों का निर्माण! मौजूदा निज़ाम के ख़िलाफ़ आम बग़ावत! पूँजीवाद का नाश! समाजवाद के उसूलों पर, न्याय और समता पर आधारित एक नये भारत का निर्माण!

लघुकथा

शार्क और छोटी मछलियाँ

• बेर्टोल्ट ब्रेष्ट

"यदि शार्क मनुष्य हो जाएँ तो क्या वे छोटी मछलियों से भला व्यवहार करेंगी?" श्रीयुत के. की मकानमालकिन की छोटी पुत्री ने उनसे पूछा। 'अवश्य', उसने उत्तर दिया, यदि शार्क मनुष्य हो जाएँ तो वे छोटी मछलियों के लिए मजबूत बक्से बनवा देंगी। उन बक्सों में वे सब प्रकार के भोजन तथा पौधे और नन्हें जानवर रख देंगी। वे इस बात का बराबर ध्यान रखेंगी कि बक्सों को ताज़ा पानी मिलता रहे तथा मछलियों की स्वच्छता और स्वास्थ्य के प्रबन्ध बने रहें। उदाहरण के लिए, यदि कोई छोटी मछली अपना पंख घायल कर ले तो उसकी तुरन्त मरहम पट्टी की जाएगी ताकि वह समय से पूर्व मरकर शार्कों के लिए असुविधा का कारण न बनें। छोटी मछलियाँ कभी उदास न हों, इसलिए समय-समय पर विशाल जलसे और भोज होंगे क्योंकि प्रसन्न मछलियाँ उदास मछलियों की तुलना में अधिक स्वादिष्ट होती हैं।

उन विशाल बक्सों में मदरसे भी अवश्य ही होंगे। वहाँ छोटी मछलियाँ तैरते हुए शार्कों के मुँह में प्रवेश कर जाने की शिक्षा लेंगी। उदाहरण के लिए, उन्हें शिक्षा में भूगोल की आवश्यकता भी पड़ेगी ताकि वे आस-पास विश्राम करती हुई शार्कों को जब ज़रूरी हो खोज सकें। स्वाभावित रूप से शिक्षा का मुख्य विषय छोटी मछलियों को नैतिक पाठ होगा। उन्हें सिखाया जाएगा कि सबसे शानदार और सबसे सुन्दर बात यह है कि छोटी मछली बाखुशी अर्पित कर दे, तथा यह कि उन्हें सदैव शार्कों पर विश्वास करना चाहिए—सबसे अधिक उस वक्त जब शार्क यह कहें कि वे उनके लिए सुनहले भविष्य का निर्माण करेंगी। छोटी मछलियों को जब यह बताया जाएगा कि यह सुनहला भविष्य तभी सुनिश्चित होगा जब वे अनुशासन और आज्ञाकारिता सीखें। उन्हें सभी तामसिक, भौतिक और मार्क्सवादी प्रवृत्तियों से बचना होगा और उनमें से कोई भी इन प्रवृत्तियों की तरफ जाने का संकेत देती हों तो तुरन्त उन्हें शार्कों को सूचित करना होगा।.....

यदि शार्क मनुष्य हो जाएँ तो फिर समुद्र तल में कला भी ज़रूर मौजूद होगी। दमदमाते रंगों में शार्कों के दाँतों के खूबसूरत चित्र होंगे, उनके मुँह और कण्ठ के चित्र खेल मैदानों जैसे होंगे, जहाँ लुढ़का जा सके, खेला जा सके। समुद्र तल पर नाट्य ग्रहों में नाटक दिखाए जाएँगे जिनमें बहादुर छोटी मछलियों को सोत्साह शार्कों के गलों में तैर कर उतरते हुए दिखाया जाएगा तथा संगीत इतना मादक-मधुर होगा कि उनके स्वर छोटी मछलियों को गिरिजा घरों के स्वप्न में ले जाएँगे और अत्यन्त उल्लासपूर्ण विचारों से भरी हुई वे शार्कों के उतर जाएँगी।

धर्म भी अवश्य होगा...। वह उन्हें सिखाएगा कि सच्चा जीवन शार्कों के उदर से ही आरम्भ होता है और यदि शार्क मनुष्य हो जाएँ तो छोटी मछलियाँ आज की तरह समान नहीं रहेंगी, उनमें से कुछ को पद देकर दूसरों से ऊपर कर दिया जाएगा। कुछ बड़ी मछलियों को छोटी मछलियों को खाने तक की इजाज़त दे दी जाएगी। यह शार्कों के लिए आनन्ददायक होगा क्योंकि फिर उन्हें निगलने के लिए बड़े ग्रास मिलेंगे और छोटी मछलियों में से सबसे महत्वपूर्ण जिनके पास पद होंगे, वे छोटी मछलियों को व्यवस्थित करेंगी। वे शिक्षक, अधिकारी, बक्से बनाने वाली इंजीनियर आदि बनेंगी। संक्षेप में, समुद्र में संस्कृति तभी होगी जब शार्क मनुष्य के रूप में हों।

राहुल फाउण्डेशन की ओर से नौजवानों के लिए कुछ बेहद ज़रूरी किताबें

• छात्र नौजवान नयी शुरुआत कहाँ से करें		(10 रुपये)
• ईश्वर का बहिष्कार	राधामोहन गोकुलजी	(15 रुपये)
• लौकिक मार्ग	राधामोहन गोकुलजी	(15 रुपये)
• धर्म का ढकोसला	राधामोहन गोकुलजी	(15 रुपये)
• स्त्रियों की स्वाधीनता	राधामोहन गोकुलजी	(15 रुपये)
• क्रान्तिकारी आन्दोलन का वैचारिक विकास	शिव वर्मा	(10 रुपये)
• संस्मृतियाँ	शिव वर्मा	(50 रुपये)
• भगतसिंह और उनके साथियों की विचारधारा और राजनीति	बिपन चन्द्र	(10 रुपये)
• भगतसिंह और उनके साथी	अजय घोष, गोपाल ठाकुर	(30 रुपये)
• An Appeal to the Young	Peter Kropotkin	(Rs. 10)

राहुल फाउण्डेशन से प्रकाशित पुस्तकें

भगतसिंह साहित्य

शहीदेआज़म की जेल नोटबुक	भगतसिंह	65
भगतसिंह और उनके साथियों की सम्पूर्ण उपलब्ध दस्तावेज		175
भगतसिंह और उनके साथियों की विचारधारा और राजनीति	विपिन चन्द्र	10
भगतसिंह अनवरत जलती मशाल	राजकुमार राकेश, मनोज शर्मा	10
इक्कीसवीं सदी में भगतसिंह	रविभूषण	10
छात्र नौजवान नई शुरुआत कहाँ	(आह्वान पुस्तिका)	10
कहे मनबहकी खरी-खरी	मनबहकी लाल	
राधामोहन गोकुल जी		
ईश्वर का बहिष्कार	राधामोहन गोकुल जी	15
लौकिक मार्ग	,,	15
स्त्रियों की स्वाधीनता	,	15
धर्म का ढकोसला	,,	15

One Pre-Recorded Cassette

Side B:
1. सिपाही का मर्सिया
2. रहबरे-मुल्को कौम बता
3. बीस्तीर्णो दुपारेर
4. रउरा सासना के बाटे ना
5. दुनिया के हर सवाल के
6. इन्तेसाब
7. हम मेहनतकश
8. यु(बन्दियों का गीत
9. इण्टरनेशनल

Side A:
1. शहीदों के लिए
2. दरबारे-वतन में
3. आँधी के झूले पर झूलो
4. साथियो! आगे बढ़ो
5. तोड़ो ये दीवारें
6. चलो पिफर से मुस्कराएँ
7. जारी है
8. पैसा

Side A songs 1, 4, 5 and Side B songs 5, 8 written by **Shashi Prakash.**
Side A songs 2, 6 and Side B songs 1, 6, 7 written by **Faiz Ahmad Faiz.**
Side B song 2 written by **Sahir Ludhianvi.**
Side A song 3 written by **Gajanan Madhav Muktibodh.**
Side B song 4 written by **Gorakh Pandey.**
Side A song 8 written by **Vihaan.**
Side B song 3 written by **Paul Robeson.**
Side A song 7 written by **Sarveshvar Dayal Saxena.**
Side B song 9 written by **Eugene Potier.**

All Songs Composed by ***Vihaan*** except -
Side B song 1, composed by Nayyara
Side B song 4, composed by Unknown
Side B song 3, composed by Paul Robeson
Side B song 6, composed by Nayyara
Side B song 9, composed by Unknown

M.R.P. Rs. 60/-

Vihaan are :
Lead Vocals and Electric and Accoustic Guitar - *Abhinav*
Vocals and Dhapli - *Tapish*
Tabla - *Nav Kishlaya*
Supporting Vocals - *Pawan, Prasen, Ajay, Lata, Yogesh, Vijay and Gaurav*

Contact us on:
vihaan_disha@rediffmail.com

© 2006 Vihaan
Unauthorised public performance, broadcasting & copying of this recording is prohibited.
Manufactured and Marketed by :
Vihaan, B-100, Mukund Vihaar, Karawal Nagar, Delhi-110094, Tel: (001)55976788

1 Audio C.D.

Tracks :
1. शहीदों के लिए
2. दरबारे-वतन में
3. आँधी के झूले पर झूलो
4. साथियो! आगे बढ़ो
5. तोड़ो ये दीवारें
6. चलो पिफर से मुस्कराएँ
7. जारी है
8. पैसा
9. सिपाही का मर्सिया
10. ऐ रहबरे-मुल्को कौम
11. बीस्तीर्णो दुपारेर
12. रउरा सासना के बाटे ना
13. दुनिया के हर सवाल के
14. इन्तेसाब
15. हम मेहनतकश
16. यु(बन्दियों का गीत
17. इण्टरनेशनल

Side A songs 1, 4, 5 and Side B songs 5, 8 written by **Shashi Prakash.**
Side A songs 2, 6 and Side B songs 1, 6, 7 written by **Faiz Ahmad Faiz.**
Side B song 2 written by **Sahir Ludhianvi.**
Side A song 3 written by **Gajanan Madhav Muktibodh.**
Side B song 4 written by **Gorakh Pandey.**
Side A song 8 written by **Vihaan.**
Side B song 3 written by **Paul Robeson.**
Side A song 7 written by **Sarveshvar Dayal Saxena.**
Side B song 9 written by **Eugene Potier.**

All Songs Composed by ***Vihaan*** except -
Side B song 1, composed by Nayyara
Side B song 4, composed by Unknown
Side B song 3, composed by Paul Robeson
Side B song 6, composed by Nayyara
Side B song 9, composed by Unknown

फ़िक्र जुल्मतों के दौर में भी गीत गाए जाएँगे
हाँ, जुल्मतों के दौर के ही गीत गाए जाएँगे.
-बर्टोल्ट ब्रेष्ट

Vihaan are :
Lead Vocals and Electric and Accoustic Guitar - *Abhinav*
Vocals and Dhapli - *Tapish*
Tabla - *Nav Kishlaya*
Supporting Vocals - *Pawan, Prasen, Ajay, Lata, Yogesh, Vijay and Gaurav*

Contact us on:
vihaan_disha@rediffmail.com

© 2006 Vihaan
Unauthorised public performance, broadcasting & copying of this recording is prohibited.
Manufactured and Marketed by :
Vihaan, B-100, Mukund Vihaar, Karawal Nagar, Delhi-110094, Tel: (001)55976788

M.R.P. Rs. 125/-

क्रान्तिकारी नवजागरण के तीन वर्ष

(23 मार्च 2005–28 सितम्बर 2008)

भगतसिंह और उनके साथियों की
शहादत की 75वीं वर्षगाँठ
और जन्मशताब्दी के तीन ऐतिहासिक
वर्षों के दौरान
नए जन मुक्ति संघर्ष की
तैयारी के संकल्प और सन्देश के साथ
क्रान्तिकारी छात्रों–युवाओं की देशव्यापी

स्मृति संकल्प यात्रा

हम सभी सच्चे युवाओं का आह्वान करते हैं!
हम तमाम जिन्दा लोगों को आवाज देते हैं!!
हम तूफान के अग्रदूतों को आमंत्रित करते हैं!!!

भगतसिंह की वीरता और कुर्बानी से तो पूरा देश परिचित है लेकिन इस देश के पढ़े-लिखे नौजवान तक यह नहीं जानते कि 23 वर्ष की छोटी सी उम्र में फांसी का फन्दा चूमने वाला वह जाँबाज़ नौजवान कितना ओजस्वी, प्रखर और दूरदर्शी विचारक था! यह हमारी जनता का दुर्भाग्य है और सत्ताधारियों की साज़िश का नतीजा है। अब यह हमारा काम है कि हम भगतसिंह और उनके साथियों के विचारों को जन-जन तक पहुँचाएँ, उनकी स्मृति से प्रेरणा लें और उनके विचारों के आलोक में अपने देशकाल की परिस्थितियों को समझकर नई क्रान्ति की दिशा तय करें और फिर उस राह पर दृढ़तापूर्वक आगे बढ़ें।

भगतसिंह के विचार क्षितिज पर अनवरत जलती मशाल की तरह हमें दिशा दिखला रहे हैं। अब गाँव-गाँव और शहर-शहर में और तमाम कालेजों-विश्वविद्यालयों में नौजवानों और छात्रों को नये सिरे से अपने क्रान्तिकारी संगठन बनाने होंगे। उन्हें चुनावबाज़ मदारियों का पिछलग्गू बनने से बचना होगा। इसके बाद, जैसा कि जेल की कालकोठरी से युवाओं को भेजे गये अपने सन्देश में भगतसिंह ने कहा था, छात्रों-नौजवानों को कारखानों के मज़दूरों और गाँव की झोपड़ियों तक जाना होगा और तमाम मेहनतकशों को संगठित करना होगा। यही सन्देश लेकर हम इस देश के हर जीवित युवा हृदय तक पहुँचना चाहते हैं।

साथियो! बैठे-बैठे सोचते रहने से तो हर राह मुश्किल लगती है। राह की कठिनाइयों को यात्रा शुरू करने के बाद ही दूर किया जा सकता है। भगतसिंह और उनके साथियों का सपना एक जलता हुआ प्रश्न बनकर हमारी आँखों में झाँक रहा है। उनकी विरासत हमें ललकार रही है और भविष्य हमें आवाज़ दे रहा है। एक ज़िन्दा क़ौम के नौजवान इसकी अनसुनी नहीं कर सकते। हम एक नई क्रान्ति की तैयारी के लिए, एक नये क्रान्तिकारी नवजागरण का सन्देश पूरे देश में फैला देने के लिए आपका आह्वान करते हैं।

दिशा छात्र संगठन और नौजवान भारत सभा की ओर से चलाये जा रहे स्मृति संकल्प यात्रा के पर्चे का अंश